1. राष्ट्रीय नवजागरण : अवधारणात्मक परिचय एवं विकास

1.1 नवजागरण (रेनेसाँ) क्या है ?

'नवजागरण' एक राजनीतिक तथ्य[1], ऐतिहासिक कालबोध[2], जीवन-शैली में परिवर्तन[3] तथा आधुनिक मानव-सभ्यता के उद्गम-विकास की आदर्श मूल प्रतीक[4] अवधारणा है। 'नवजागरण' न आधुनिक युग का अरुणोदय मात्र है, न अतीत की वापसी, न उच्च क्लासिकी ज्ञान का संरक्षण, न सामंती व्यवस्था के विरुद्ध राज व्यवस्था, न अभूतपूर्व आविष्कारों की खोज मात्र है[5], नवजागरण का मूल प्रस्थान बिंदु है—मानव, मानव-मंगल और मानव की स्वतंत्र सत्ता का विकास। इसकी मूल चेतना है—सुषुप्त जनमानस में नव-स्फूर्त-चेतना, विवेक युक्त मुक्त चिंतन, और राष्ट्र-भाव-ज्ञान-संवेदन का स्फुरण-जागरण। यह इतिहास है—आत्मबोध, आत्मपरीक्षण और आत्म-चेतना प्राप्ति का, जिसने मानवजाति को प्रबुद्ध, स्वाधीन आधुनिक और कर्त्तव्यशील बनाया। स्विस विचारक जेकब बर्कहार्ट ने इस अवधारणा को मानव-प्रज्ञा का विस्फोट[6]; मैशला ने 'मानव तथा जगत् का प्रकटीकरण' और कला समीक्षक पैंटर ने 'बौद्धिक चिंतन के प्रति अनुराग'[7]

---

1. Karl W. Deutsch, Nationalism and Social Communication, page 165.
2. Denys Hay, The Italian Reneissance ; In its Historical Background, page 10.
3. Ibid, page 2-3.
4. Hans Baron, Encyclopaedia Britannica, 1977 Edition 15th, page 662.
5. John Addington Symonds, A Short History of the Renaissance Italy, page 3.
6. Jakob Burckhardt, The Civilization of the Renaissance in Italy.
7. Pater Walter, The Renaissance, Studies in Art and Poetry, London (1928), page 2-3.

आदि की संज्ञा दी है। अतः यूरोप एवं भारतीय इतिहास, साहित्य, कला, विज्ञान, दर्शन राजनीति आदि क्षेत्रों में नवजागरण (रेनेसाँ) की एक नहीं, अनेक छवियाँ प्रचलित रही हैं जो एक-दूसरे से पर्याप्त भिन्नता रखती हैं। भिन्न-भिन्न देशों में 'नवजागरण' की अवधारणा का विकास, भिन्न ऐतिहासिक कालों में, भिन्न दिशाओं और रूपों में हुआ है।

1.1.1 व्युत्पत्ति एवं प्रयोग-परंपरा—'नवजागरण' (रेनेसाँ) मूलतः यूरोपीय इतिहास से गृहीत अभारतीय अवधारणा है जिसका प्रयोग और विकास 19वीं शती के भारत में इसकी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विरासत और चिंतन के अनुरूप पर्याप्त पृथक् रूप में हुआ है। हिन्दी में 'नवजागरण' के लिए अनेक समानार्थी शब्द 'पुनर्जागरण', 'पुनरुत्थान', 'नवोत्थान', 'पुनरुज्जीवन,' 'नवजीवन,' 'नवयुग', तथा 'नवजागृति' आदि प्रचलित रहे हैं किन्तु आधुनिक संदर्भ में 'नवजागरण' का प्रयोग अंग्रेजी के 'रेनेसाँ' (Renaissance) शब्द के पर्याय के रूप में रूढ़ हो गया है। 'रेनेसाँ, फ्रांसीसी शब्द 'रेनायत्रे' (Renaitra) से गृहीत[1] है। मूलतः इन अंग्रेजी-फ्रांसीसी शब्दों की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा के 'रेनासोर' (Renascori) शब्द से हुई है जिसका इस भाषा में शब्दार्थ—'पुनर्जन्म' या 'पुनर्जागरण' (to be born again, rebirth) है। इटेलियन भाषा में भी 'रेनेसाँ' को 'कला एवं ज्ञान का पुनर्जागरण या रिनेसिमेंटो' (Rinascmento) कहा गया है।[2]

संस्कृत भाषा का नव-उपसर्ग 'जागृ' धातु में ल्युट प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न है[3] जिसका अर्थ "जागते रहने की अवस्था या भाव है। लाक्षणिक अर्थ में 'जागरण' वह अवस्था है जिसमें किसी जाति, देश, समाज आदि को अपनी वास्तविक परिस्थितियों और उनके कारणों का ज्ञान हो जाता है और वह उन्नति और रक्षा के लिए सचेष्ट हो जाता है।"[4]

नवजागरण (रेनेसाँ) के अर्थों में 'नवजीवन' या 'पुनर्जागरण' की व्यंजना प्रधान है। 'नवजागरण' मानव या राष्ट्र की आत्मा, मन, मस्तिष्क की चैतन्यावस्था का प्रतीक है। यह मानव-जीवन और विचार जगत् की समस्त गतिविधियों में नव-चेतना और नव-जीवन-शक्ति का स्पंदन है।

1.2.1 यूरोपीय एवं भारतीय नवजागरण : परंपरागत एवं आधुनिक अवधारणाएं—जैसाकि स्पष्ट किया जा चुका है कि नवजागरण (रेनेसाँ) एक गहन अव-

1. 'The term Renaissance was borrowed from the French language in 1840'—Henry S. Lucas, 'The Renaissance and Reformation, page 3.
2. Encyclopaedia Americana (1966) Volume 23, page 367-B.
3. 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, (तृतीय संस्करण) 1967, पृ० 467
4 'मानक हिन्दी कोश', दूसरा खंड, पृ० 353

धारणा है जिसका विवेचन कतिपय तथ्यों और ऐतिहासिक दस्तावेजों से नहीं किया जा सकता। भारतीय नवजागरण के मूल आशय, प्रवृत्तियों और ऐतिहासिक-सांस्कृतिक संदर्भ को गहराई से विश्लेषित करने के लिए सर्वप्रथम यूरोपीय रेनेसाँ-धारा एवं संस्कृति का आकलन करना उपयोगी होगा।

, यूरोपीय इतिहास को विवेचित करते हुए प्रायः अधिकांश इतिहासकार समवेत रूप में 'रेनेसाँ' को एक विशिष्ट काल (लगभग 1300 से 1600 ई०) के मध्य हुआ एक बौद्धिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन मानते हैं। आंदोलन के रूप में इस अवधारणा का विकास 1835 ई० के पश्चात् हुआ।[1] ऐतिहासिक परंपरागत मान्यता है कि यह आंदोलन 14वीं शती में इटली से 'कला और साहित्य की पुनर्स्थापना' के रूप में फ्रांसिस्को पैट्रार्क तथा जियोमानी बोकेसियों आदि के द्वारा प्रारम्भ हुआ और पन्द्रहवीं शताब्दी में पूर्णतः फल-फूल कर, यह 16वीं शती तक आल्पस पर्वत पार कर सम्पूर्ण यूरोप में फैल गया था।[2]

किन्तु आधुनिक अवधारणा के अनुसार रेनेसाँ उन ऐतिहासिक आर्थिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का क्रमिक विकास मात्र है,[3] जिसके पूर्व चिह्न नवीं शती के कैरोलिंगियन पुनर्जागरण, 10वीं शताब्दी के ओटोनियन (Ottonian) पुनर्जागरण तथा पियर अवेलार्ड (1079-1142), पीटर लोम्बार्ड आदि नैयायिकों के तार्किक चिंतन में दृष्टि-गोचर होने लगे थे। 'रेनेसाँ' के नवस्वरूप और आधुनिक दृष्टि का पुनर्भास रोमन सम्राट फेड्रिक द्वितीय (1212-50) की धर्म निरपेक्ष स्वतंत्र दृष्टि, दाँते अलीगियरी (1265-1321) कृत 'डिवाइन कॉमेडी' की वैयक्तिकता और देशज भाषा, रोजर बेकन के प्रायोगिक दार्शनिक चिंतन तथा जियटो (Giotto) आदि के चित्रों से मिलने लगा था। आधुनिक आर्थिक इतिहास समीक्षक आरमेंडो सपोरी तथा फ्रेडिक सी० लेन का भी मत है कि यूरोप में पुनर्जागरण को प्रोत्साहित करने वाली आर्थिक शक्तियों का प्रस्फुटन 11-12 शती में क्रूसेड युद्ध के बाद से ही होने लगा था।[4] यूरोप में नागरिक-संस्कृति के विकास, व्यापारिक पूंजीवादी व्यवस्था के आविर्भाव, प्रजातंत्रीय राज्य-व्यवस्था तथा मध्यवर्गीय संस्कृति के उदय आदि के फलस्वरूप पुनर्जागरण की बौद्धिक पृष्ठभूमि निर्मित हुई।

1.2.2 नवजागरण (रेनेसाँ) : विविध अर्थ, परिभाषा एवं सोपान

आधुनिक संदर्भ और अर्थ में 'रेनेसाँ' शब्द का प्रयोग संभवतः पहली बार बाल्जाक

1. V. H. H. Green, Renaissance and Reformation, page 29
2. (A) Jakob Burckhardt, The Civilization of the Renaissance in Italy, page 2, 3, 10
   (B) Bush, M. L., Renaissance and Reformation and the Outer World, page 149
3. Chabod Federico, 'Machiavelli and the Renaissarce, page 149-152
4. Encyclopaedia Britannica (Edition 15th, page 662)

ने 1829 ई० में अपनी नाट्य कृति 'Balde Sceaux' में किया था।[1] इस शब्द को आधुनिक स्वरूप 19वीं शती के जुलियस मैशला (Juleus Michelet), जॉन एडिंग्टन साइमंड (1840-93) तथा मुख्यत: जेकोब बुर्कहर्ट (Jakob Burckhardt) आदि ने प्रदान कर इसके आधुनिक अध्ययन-शोध की नींव रखी।

यूरोप में 15वीं शती (the quattrocento) के अन्त और 16वीं सदी (the cinquecento) के प्रारम्भ तक रेनेसाँ का परंपरागत अर्थ 'लेटिन-ग्रीक साहित्य एवंकला के पुनर्जन्म' तक सीमित था और यह विश्वास व्यक्त किया जाता था कि लेटिन-ग्रीक-जीवन तथा ज्ञान ही सच्ची संस्कृति का उद्गम है। किन्तु आधुनिक इतिहासकार रेनेसाँ का अर्थ 'ग्रीक-लेटिन साहित्य एवं कला का प्रत्यावर्त्तन' (Revival of learning) मात्र ही नहीं करते, इसे तो वे रेनेसाँ का केवल एक लक्षण मानते हैं।[2]

यूरोपीय इतिहास में रेनेसाँ यूरोपीय समाज के मध्ययुगीन दृष्टिकोण, जनमान्यताओं, जीवन और चिंतन-धारा में वैचारिक ऐतिहासिक प्रक्रिया या आंदोलन था। जॉन एंडिंग्टन साइमंड के शब्दों में—

"रेनेसाँ को यूरोपीय प्रज्ञा के सर्वांगपूर्ण आंदोलन के अर्थ में समझा जाएगा जो आत्मिक मुक्ति लाने वाला, विवेक और इन्द्रिय ज्ञान के सहज अधिकारों में पुन: विश्वास प्रस्थापित करने वाला, मानव के निवास स्थान के रूप में इस नक्षत्र पर विजय प्राप्त करने वाला तथा व्यक्ति और राज्य दोनों के लिए ऐसे सैद्धान्तिक नियमों को निर्माण करने वाला है जिसका स्वरूप मध्ययुग के नियमों से भिन्न है।"[3]

रेनेसाँ : संक्रांति काल—कतिपय आधुनिक इतिहासकार 'रेनेसाँ' को आधुनिक काल और महान मध्ययुग के बीच का संक्रांति काल (Transition Period) मात्र मानते हैं।

---

1. Chamber's Encyclopedia Volume 11, page 591.
2. Walter Pater, 'The Renaissence; Studies in Arts and Poetry, London, page 12.
3. (It will be considered as implying a comprehensive movement of the European intellect and will towards self-emancipation, towards reassertion of the natural rights of the reason and the senses, towards the conquest of this planet as a place of human occupation, and towards the formation of regulative theories both for state and individual differing from those of Medieval Times.) Symonds, J. A., Encyclopedia Britannica (Edition IX) volume XX, page 38.

हेनरी एस० ल्यूकस ने इसके आधुनिक अर्थबोध को परिभाषित करते हुए कहा[1]—

"रेनेसाँ, 1300 से 1600 ई० के मध्य में प्राप्त यूरोपीय समाज की उन सांस्कृतिक उपलब्धियों को दर्शाता है जो आधुनिक और मध्ययुग के बीच का संक्रमण काल कहलाता है। इसमें न केवल कला, संगीत, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में महत्तर लक्ष्य प्राप्त किए वरन् जीवन के आर्थिक आधार, समाज के ढांचे और राज्यों की व्यवस्था में दूरगामी परिवर्तन हुए।" प्रो० हे ने 'रेनेसाँ' को जीवन-शैली में परिवर्तन-प्रक्रिया माना है।[2]

संक्षेप में यूरोपीय रेनेसाँ सर्वांग मानवीय ज्ञान-सम्पदा, सर्जनात्मक कला शक्तियों एवं बहुमुखी वैज्ञानिक उपलब्धियों का बीजवपन काल था। 'यह मध्य युग से आधुनिक काल में पदार्पण था।

किन्तु रेनेसाँ की संक्रमणकालीन संस्कृति में नवीन मौलिक चिंतन और मध्ययुगीन जीवन-मूल्य बहुत दूर तक साथ-साथ चला करते हैं। इसलिए आधुनिक काल के आगमन और मध्ययुग के अवसान के बीच कोई स्पष्ट विभाजक काल-रेखा नहीं खींची जा सकती।[3] वालेस के० फर्गुसन का भी मत है—"रेनेसाँ काल को अव्यवस्थित परिवर्तनों का युग परिभाषित किया जा सकता है जिसमें काफी कुछ अभी भी मध्ययुगीन था, तो काफी कुछ में आधुनिक मान्यताएँ पहचानी जा सकती थीं और काफी कुछ अपने आप में विलक्षण था। यह महान मध्ययुग और आधुनिक काल के बीच का सेतु काल है, लेकिन साथ ही यह एक सांस्कृतिक युग था जिसकी अपनी पहचान थी क्योंकि यह काल राजनीतिक, सामाजिक और बौद्धिक उत्तेजनाओं से पूर्ण था।[4]

---

1. The term 'Renaissance'—it signifies the cultural achievement of European society between 1300 and 1600 which mark the passage from the middle Ages to the modern period. These includes not only for reaching changes in the economic bases of life, the structure of society and the organization of states.' Lucas, S. Henry, 'The Renaissance and the Reformation,' page 3.
2. Denys Hay 'The Italian Renaissance, in its Historical Background,' page 10.
3. Symonds, J. C. The Short History of the Renaissance in Italy, page 1.
4. "So far as it can be defined, the age of the Renaissance was an age of Chaotic changes, in which there was recognizably modern and much also that was peculiar to itself. It bridged the gap between the High Middle Ages and modern times, but if was also a culture period in its own right, filled with a great political, social and intellectual ferment"—Wallace K. Ferguson. 'A Survey of European Civilization, (Third Edition) part one to 1660, page 323.

यूरोपीय नवजागरण के सोपान—वालेस के० फर्गुसन ने ऐतिहासिक दृष्टि से यूरोपीय नवजागरण का क्रमिक विकास चार सोपानों के अन्तर्गत विश्लेषित किया है।[1]

1. प्राचीन ज्ञान का पुनरुत्थान, 2. मानववाद, 3. धार्मिक सुधार, 4. आधुनिक दर्शन, विज्ञान आदि का संपूर्ण यूरोप में विस्तार।

नव जागरण : भारतीय संदर्भ—यूरोप की 14वीं शती के समान भारत में 19वीं शताब्दी सांस्कृतिक संक्रमण-काल की सदी कही जाती है जिसमें मध्ययुगीन जीवनादर्श तो विद्यमान थे ही, साथ ही इस नवयुग में जनमानस नव-चेतना तथा नव-वैचारिक उद्वेलन का अनुभव करने लगा था जिसके फलस्वरूप परंपरागत एवं आधुनिक विचारणा का अन्तर्द्वन्द्व जीवन, साहित्य, कला एवं पत्रकारिता आदि में प्रतिफलित होने लगा था।

भारतीय विचारकों ने उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर वर्तमान कालीन भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक रूपान्तरण, पुनरुत्थान तथा नवविकास को 'भारतीय नव-जागरण' के नाम से अभिहित किया है।[2] जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि 'नवजागरण' शब्द यूरोपीय 'रेनेसाँ' की तर्ज और अर्थसंगति पर गढ़ा गया है। डॉ० शिवदान सिंह चौहान ने 'राष्ट्रीय नवजागरण' को इसी अर्थ-बोध को लेकर व्याख्यायित किया है।

"राष्ट्रीय जागरण से तात्पर्य अपने राष्ट्रीय अस्तित्व और एकता की साम्राज्य-विरोधी राजनीतिक चेतना या भावना का उत्पन्न हो जाना मात्र नहीं, इससे केवल इतना समझ लेना इसके अर्थ को अत्यन्त संकुचित कर देना है। हमारे राष्ट्रीय जागरण से मिलती-जुलती, किन्तु भिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों में एक धारा यूरोप के देशों में कई एक शताब्दियों पहले ही प्रवाहित हो चुकी है। अंग्रेजी में इस धारा को रिनेसाँ (Renaissance) कहते हैं जिसका इतिहास में गूढ़ अर्थ 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण' है।[3]

किन्तु भारतीय नवजागरण को केवल यूरोपीय रेनेसाँ से किये अनूदित अर्थों या उधार ली गई शब्दावली के माध्यम से ही नहीं समझा जाना चाहिए इसकी जाँच-परख भारतीय साहित्यकारों, दार्शनिक एवं पत्रकारों आदि के स्वदेशपरक दृष्टिकोण से भी की जानी चाहिए।

'भारतीय नवजागरण' यूरोपीय सभ्यता और आंग्ल औपनिवेशिक शासन के राज-नीतिक-प्रभुत्व के घात-प्रतिघात से उत्पन्न जन-आन्दोलन था। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' इसे 'नव-मानवतावाद' के आंदोलन की संज्ञा देते हैं—

"पुनरुत्थान से मेरा तात्पर्य उस वैचारिक आंदोलन से है जो भारत और यूरोप के संपर्क के साथ प्रारम्भ हुआ था और जो कदाचित् आज भी चल रहा है। यह आंदोलन भारत में नई मानवता के जन्म का आंदोलन है एवं उसके प्रवाह के साथ केवल यूरोपीय विचार ही भारत में नहीं आ रहे हैं बल्कि इस देश के बहुत से प्राचीन विचार भी नवीनता प्राप्त

---

1. Wallace K. Ferguson, 'The Renaissance in Historical Thought and 'They Saw it happen in Europe'—compiled by C. R. N., page 1.
2. डॉ० गौरीशंकर भट्ट, 'भारतीय नवजागरण प्रणेता और आंदोलन', पृ० 11
3. 'हिन्दी गद्य साहित्य', शिवदान सिंह चौहान, (तृतीय आवृत्ति) 1939, पृ० 32

कर रहे हैं। पौराणिक कथाओं पर इस आंदोलन ने नयी आभा बिखेरी है और इसके आलोक में हमारे इतिहास की अनेक घटनाएँ एवं नायक नई ज्योति से जगमगाने लगे हैं।"[1]

इस कथन में पुरातनता के पुनरुत्थान की ओर संकेत किया गया है किन्तु पुरातन मूल्यों की पुनर्स्थापना आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में ही होनी चाहिए। उन्होंने स्पष्ट किया "जो भी व्यक्ति आज के सत्य को अनादृत करके भूतकाल की मरी हुई बातों को दुहराता है, उसे हम पुनर्जागरणवादी या रिवाइवलिस्ट कहते हैं—किन्तु, नवोत्थान में भी अतीत की बातें दोहराई जाती हैं। जब नवोत्थान का समय आता है, जातियों के कुछ पुरातन सत्य दुबारा जन्म लेते हैं यह पुनर्जागरण नहीं, सत्यों का पुनर्जन्म है।"[2]

नवजागरण की चेतना, सांस्कृतिक-राजनीतिक स्वरक्षा की चुनौती जनमानस में जगाकर, उनकी समस्त सर्जनात्मक एवं वैचारिक शक्तियों को उभार कर तथा अतीत के ज्ञान-वैभव को मुखर कर नवयुग और नवमानव को जन्म देती है। 'वन्देमातरम्' राष्ट्रीय अंग्रेजी पत्रिका के सुविज्ञ संपादक एवं चिंतक श्री अरविंद घोष ने नवजागरण की मूल चेतना को प्रौढ़ अभिव्यक्ति दी है—

"नवजागरण वस्तुतः पुनर्जन्म है और पुनर्जन्म, न केवल बुद्धि से, न पूर्ण आर्थिक समृद्धि से, न ही नीति या सिद्धांत से या न प्रशासनिक परिवर्तन से होता है। वह तो नया हृदय प्राप्त करने, त्याग की अग्नि में अपना सर्वस्व होम करने और माँ के गर्भ में पुनः जन्म लेने से होता है।"[3]

"नव-निर्माण के माने नई प्रणालियों का जन्म नहीं बल्कि नवीन मानव या नवीन भारतीय का जन्म था।"[4]

'नवजागरण' की अवधारणा में मानवात्मा, मन-मस्तिष्क, संस्कृति-सभ्यता, भाव-भाषा, जीवन-शैली और जन-दृष्टिकोण में वैचारिक अभिनवीकरण तथा बदलाव का भाव या प्रक्रिया निहित होती है। इसमें नया आत्म-बोध-मन, नयी सोच और चिंतन-धारा तथा नयी रचनात्मक दिशाएँ स्वतः प्रस्फुटित-जागरित होने लगती है। जनता की गतानुगतिकता से आबद्ध संकीर्ण मनोभूमि में बौद्धिक उत्क्रान्ति का उन्मेष होता है। फल-

1. रामधारीसिंह दिनकर, 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण', पुनर्उद्धृत 'प्रज्ञा' अक्टूबर, 1970, पृ० 49
2. रामधारीसिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ० 533
3. "Regeneration is literally rebirth, and rebirth comes not by the intellect. not by the fullness of the purse, not by policy, not by change of machinery but getting a new heart, by throwing away all into the fire of sacrifice and being beborn in the mother"—'Bande Matram', weekly edition. April 12, 1908.
4. बाबू राव जोशी, भारतीय नवजागरण का इतिहास, भूमिका भाग, पृष्ठ 1

स्वरूप जन-मन की जड़ता टूटती है और इस अभिनवीकरण की प्रक्रिया का माध्यम बनते हैं—तत्कालीन पत्रकारिता और साहित्य आदि।

आंग्ल-पराधीन भारतीय इतिहास में 19वीं शती का नवजागरण काल 'राष्ट्रीयता' के भावों के उर्वरण का द्योतक भी है।[1] अंशतः राष्ट्रीय जीवंत चेतना का अंकुरण ही राष्ट्रीय नवजागरण है। डा० देवराज पथिक की धारणा है—

"वस्तुतः जब कभी भी समाज अथवा राष्ट्र की परंपरागत मूल धारणा निर्बल पड़ जाती है और किसी नई विचारधारा को कोई समाज अथवा राष्ट्र ग्रहण करता है और वह विचारधारा किसी निश्चित लक्ष्य अथवा ध्येय के आलोक में आगे बढ़ती है तो राष्ट्रीयता की भावना जागृत होती है। इसी जागृति को राष्ट्रीय नवजागरण के नाम से संबोधित किया जाता है।"[2]

संक्षेपतः यूरोपीय एवं भारतीय परिभाषाओं और स्थापनाओं के परिपार्श्व में कहा जा सकता है कि नवजागरण का अर्थ 'ऐतिहासिक काल-चेतना'[3] और 'विचार' दोनों अर्थों में किया जाता है और नवजागरण (रेनेसाँ) के अर्थ एवं अवधारणा देश, काल एवं परिवेश के अनुकूल परिवर्तित होते रहे हैं।

स्पष्ट है नवजागरण की प्रक्रिया सर्वव्यापी, बहुमुखी एवं बहुआयामी होती है। इस आधुनिक नवचेतना ने यूरोप और भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग, पहलू और क्षेत्र को प्रभावित कर उनमें परिवर्तन किये हैं।

नवजागरण स्वाधीन वैचारिक क्रान्ति की ओर अग्रसर होने की एक प्रक्रिया है।[4] 'नवजागरण' जनमानस की एक विशिष्ट जागरूक स्थिति को उजागर करता है। इस संक्रमणकालीन संस्कृति में नवीन परिवेश के अनुकूल जीवन और जगत को एक सर्वथा नये कोण से, नव-चिंतन-बिंदु और नव आचार-संहिता से पुनरावलोकन तथा आत्मावलोकन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। नवजागरण की सांस्कृतिक-वैचारिक चेतना राष्ट्र और व्यक्ति दोनों पक्षों से सुसम्बद्ध होती है। 'नवगारण' की सांस्कृतिक चेतना परम्परा और आधुनिक चिंतन से निर्मित ऐसी तरंगें हैं जो देश, जाति-भाषा-सभ्यता और जीवन-पद्धति आदि को अपने प्रवाह में बहाकर ले जाती है और जन सामान्य को नव-जागृति के चमत्कारी जल से आप्लावित कर जीवन का रूख ही बदल देती है। यह राष्ट्रीय-चेतना

---

1. Dietmar Rothermund, The Phases of Indian Nationalism, page 13.
2. डॉ० देवराज पथिक, नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ 17
3. पुनर्जागरण का अर्थ है—"नवीन आलोक, भविष्य की ओर बढ़ने की एक क्रान्तिकारी प्रेरणा, घिसे-पिटे रीति-रिवाजों की जंजीरों से मुक्ति'—विश्वनाथ नरवणे, 'माडर्न इंडियन थाट', पृष्ठ 8
4. Denys Hay, 'The Indian Renaissance in its historical background', page 10, chapter II.

संस्कार और विवेक, विचार और अनुभूति, पुरातन और आधुनिक चिन्तन धारा सांस्कृतिक एवं वैचारिक उत्कर्ष और द्वन्द्व से मूर्त्त होती है।

आधुनिक रेनेसाँ-चिन्तन : मूलभूत संकल्पना तत्त्व

आधुनिक रेनेसाँ-संस्कृति के आधारभूत संकल्पना-तत्त्व या लक्षण इस प्रकार हैं।[1]

1. राजव्यवस्था : एक कला : मध्ययुग में शासक ही वसुंधरा पर ईश्वर का प्रतिनिधि शासनकर्त्ता था। पुनर्जागरण काल में राजनीति में पहली बार संवैधानिक लोकप्रतिनिधि राज सत्ता,[2] कूटनीतिक कला एवं नवीन व्यावसायिक दृष्टिकोण एवं पद्धति (Mercantalism) का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल में राजनीति की धारणा 'प्रकृति या दैवीसत्ता का एक अंग-मात्र न होकर मानव जाति द्वारा विवेकपूर्ण तार्किक परिगणन की स्व-संभूत उपज थी।"[3] निकोलो मैकियावली (1469-1527) की प्रसिद्ध कृतियों 'द प्रिंस' तथा 'डिसकोर्सेज' में और फ्रांसिस्को गुईसिआरडिनी (Francesco Guicuardine) (1483-1540) की 'हिस्ट्री ऑफ इटली' में आधुनिक राजनीतिक कला का सच्चा रूप तथा भाव प्रकट हुआ है। इस रेनेसाँ राजनीति-दर्शन में धर्म तथा नैतिकता से राजनीति को पृथक् किया गया तथा स्वार्थ-नीति, भौतिक बल और कूटनीति को राजनीतिक सफलता का मुख्याधार माना गया।

भारत में अंग्रेजों की व्यावसायिक राजनीति बहुत कुछ इसी राजनीतिक दर्शन और कूटनीति का प्रतिरूप लगती है।

2. पुरातनता का पुनरूत्थान—यह कहना भ्रामक होगा कि मध्य युग में प्राचीन चिंतन-दर्शन को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया। प्राचीन दार्शनिक प्लेटो और वर्जिल मध्ययुगीन चिंतन-दर्शन के अनिवार्य अंग रहे तथापि इटेलियन रेनेसाँ में अतीत को आधुनिकता के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया न कि अतीत में जो कुछ होता रहा है, वह पुनः वर्तमान में भी हो। प्राचीनता को मृत परंपरा के रूप में स्वीकार किया गया और उसके द्वारा नये मूल्य, नये अर्थ, नयी पुनर्व्याख्या विकसित की गई।

यूरोपीय पुनर्जागरण के बौद्धिक पक्ष को मानववाद (Humanism) और जिन्होंने इस पुरातन ग्रीक-रोमन ज्ञान धारा के विकास में अपना जीवन समर्पित कर

---

1. स्विस इतिहासकार जेकोब बुर्कहर्ट (Jakob Burehhardt) ने अपनी ऐतिहासिक कृति "द सिविलाइजेशन ऑफ रेनेसाँ इन इटली" (1860) में रेनेसाँ—संस्कृति के इन लक्षणों पर गहराई से नजर डाली है।
2. Jakob Burckhardt, The Civization of the Renaissance in Italy, page 3.
3. ...'Politics is an autonomous product of conscious, rational calculation of Human beings'—Kington M. Robert, Jakob Burckhardt and the Renaissance and 100 year after, page 7.

दिया उन्हें मानवतावादी (Humanists) कहा गया।[1] पेट्रार्क, बोकेसियो, पोगियो ब्रासिओलिनी (1380-1459), पोलिजियानो (1404-1454), पिकोंडिला मिनडोला (1466-1459), इरास्मस आदि मानववादियों के अथक प्रयासों से सहस्रों प्राचीन ग्रंथों के पुनरुद्धार, पुनर्व्याख्या, तुलनात्मक अध्ययन, अनुवाद तथा समीक्षा आदि का महत्व-पूर्ण कार्य किया गया। इसमें इटली के समृद्ध व्यापारीवर्ग कोसिमो लोरेंजो, मेडिसी आदि ने भी प्राचीन साहित्य की अमूल्य निधियों को भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखने में अपना सहयोग एवं संरक्षण प्रदान किया था।

प्राचीन कला की पुनर्स्थापना में चित्रकार माइकेल एंजिलो राफेल, लियोनार्डो दा विंची, मूर्तिकार निकोला पिसानो, शिल्पकार जियोवार्टी आदि ने अपने कलात्मक दृष्टिकोण, प्रकृति से तादात्म्य, मानवीय अनुभूतियों और शारीरिक सौंदर्य-बोध के भव्य चित्रण में रोमन-यूनानी कला की ही पुनः प्रतिष्ठा की थी।

इस साहित्यिक कला के पुनरुज्जीवन से पुरातत्व विज्ञान एवं ऐतिहासिक आलो-चना-विधि का सूत्रपात हुआ। विस्मृत प्लेटो आदि के दर्शन, ग्रीक रोमन साहित्य के अध्ययन-विश्लेषण के फलस्वरूप कला, साहित्य, शिल्प एवं मानव तथा राष्ट्रीय जीवन में उदार भावना, श्रेष्ठ आदर्शों एवं मूल्यवान तत्त्वों का समावेश हुआ।

भारतीय संदर्भ में भी अतीत के ज्ञान-वैभव पर भविष्य की आधारशिला रखी गयी। अरविन्द घोष के शब्दों में—"पुनर्जागरण भारतीय आत्मा का एक नवशक्ति के रूप में अपने आन्तरिक तथा प्राचीन प्राणों का ही पुनर्जन्म है। यह पूर्ण प्रज्ञा है।"[2] अतः आधुनिक परिवेश के अनुकूल प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों, संदर्भों को तत्कालीन साहित्य जीवन से जोड़ा गया। "भारतीय नवोत्थान का एक प्रधान लक्षण अतीत की गहराइयों का अनुसंधान अन्वीक्षण था।"[3]

3. व्यक्तिवाद का उत्कर्ष : मध्ययुगीन जगत् में मानव की अस्मिता नगण्य थी। उसकी पहचान परिवार, समाज एवं संस्था आदि के रूप में सीमित थी।[4] रेनेसाँ मानव में पहली बार निजत्व पर गर्व करने का तीव्र अहसास उत्पन्न हुआ। रेनेसाँ का मूल दर्शन एवं उद्देश्य है—'मनुष्य में आस्था और जीवन की स्वस्थ आराधना जो कभी नहीं बदलते[5] 'मानव ही सबका मापदण्ड है' (Man is the measure of all things)। ग्रीक दार्शनिक पाइथागोरस की इस उक्ति को सत्य सिद्ध करते हुए 'मानव' के प्रति एक नव-दृष्टि और नव-मनोभूमि निर्मित हुई। इस सार्वभौम-मानव के संबंध दैवी-सत्ता के

---

1. Wallace K. Ferguson, A Survery of European Civilization, page 333.
2. अरविन्द घोष, दि रेनेसाँ इन इण्डिया, पृ॰ 68
3. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ॰ 533
4. V.H.H. Green, Edward Arnold, Renaissance and Reformation, page 23.
5. प्रो॰ कुबेरनाथ राय, सरस्वती (मासिक), मार्च 1964 पृष्ठ 217

साथ तुलनीय न होकर 'मानव से मानव के बीच और मानव से परिवेश' के रूप में संयुक्त हुए। रेनेसाँ—कलाकार का व्यक्तित्व, कला-विषयों से अधिक महत्वपूर्ण हो उठा। जनसामान्य का चिंतन, भावनाएँ एवं कार्यकलाप धर्मशास्त्रीय बंधनों से मुक्त हुए। उन्होंने पोप के अधिकारों को चुनौती दी। फलतः मानव के सम्पूर्ण बहुआयामी व्यक्तित्व का विकास हुआ। रेनेसाँ काल के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर एल० बी० अलबर्टी का कथन था 'यदि व्यक्ति चाहे तो सब कुछ कर सकता है।'[1]

भारतीय नवजागरण काल में भी संयुक्त परिवार व्यवस्था आदि का विघटन और व्यक्तिवादी मूल्यों का विस्तार होने लगा था। तत्कालीन मानव निज गरिमा, आत्मविश्वास और खोयी अस्मिता पुनः प्राप्त करने में जुटा हुआ था।

4. जगत और मानव की नव खोज और भूमिका : एक साहसिक रोमांचक चेतना और नवीनता के अहसास ने सम्पूर्ण यूरोप को जकड़ लिया था। यह अहसास इतना गहन एवं टटका था कि उसने संपूर्ण मध्ययुगीन चिंतन को ही झुठला कर चुनौती दी थी। पुनर्जागरण काल के भौगोलिक अन्वेषणों एवं वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव और विश्व संबंधी सम्पूर्ण शास्त्रीय परिकल्पनाओं और धर्म स्वीकृत मान्यताओं को प्रामाणिक रूप में चुनौती दी।[2] ब्रूनो, कोपरनिक्स, गैलीलियो, केपलर आदि ने तथा भौतिक, चिकित्सा, रसायन, वनस्पति एवं प्राणि शास्त्र के अन्वेषकों की अभूतपूर्व खोजों ने सम्पूर्ण पारंपरिक पूर्व स्थापित सत्यों पर प्रश्न चिह्न लगा दिये थे। साहसिक, रोमांचक अनवरत भ्रमण ने विश्व की परिधि को विस्तृत कर दिया। इन आविष्कर्ताओं द्वारा तेरहवीं शती में मेरिनर्स कम्पास और पृथ्वी के गोलाकार होने के सिद्धान्त आविष्कृत होने पर अज्ञात देशों की खोज का लम्बा सिलसिला चल पड़ा। बोथलेंगो की 'केप ऑफ गुडहोप' कोलम्बस की 'वेस्टइंडीज', अमेरिगो वेशपुची की 'अमेरिका', वास्कोडिगामा की 'भारत' आदि खोजों से ही आगे चलकर पूंजीवादी, औपनिवेशिक व्यवस्था का आविर्भाव और वाणिज्य-व्यवसाय में औद्योगिक क्रान्ति संभव हो पायी।

रेनेसाँ साहित्य के प्रवर्तक पेट्रार्क ने मानव को प्रकाश पुञ्ज के रूप में देखा। पुनर्जागरण काल में एक सौन्दर्य-चेतना युक्त सार्वभौम मानव एवं मानवतावादी विश्व दृष्टि का विकास हुआ। मानव का व्यक्तित्व बहुमुखी हो उठा। इस युग में लौकिक-सौन्दर्य, मानवीय-भंगिमा तथा मानव के चरित्र और अनुभूति के कलात्मक धर्म निरपेक्ष प्रस्तुतिकरण को महत्ता दी गयी जिससे रचनात्मक सर्जन अधिक व्यक्तिगत, अधिक मानवीय, अधिक सहज एवं अधिक आनंददायी हो गया। उदाहरण स्वरूप इस युग के साहित्य तथा कला-विषय, उसकी रूपरेखा और स्वरूप यद्यपि अधिकांशतः धार्मिक होते थे किन्तु कलाकार 'मैडोना और बालक' के चित्रण में भी नारी की देहयष्टि के सौन्दर्य और गरिमा को अधिक मुखर अभिव्यक्ति देते थे, न कि मैडोना के मातृत्व और धार्मिक पवित्र भावों को। रेनेसाँ-कलाकारों ने धार्मिक-लौकिक सौन्दर्य के अतिरिक्त मानव

1. Niebuhr, The Nature and Destiny of Man, page 317.
2. Hugh F, Kearney, Origins of the Scientific Revolution, page 3, 115.

के दैनिक कार्यकलापों, ग्रामीण परिवेश का भी यथार्थ चित्रण किया। इनमें लोरेन्जो, फिरन्ज्वेला (Firinzuola) ब्रेटो आदि प्रमुख थे। प्राकृतिक भव्यता का मुक्त चित्रण भी यत्र-तत्र मिलने लगा था।[1] नवजागरण काल के भारतीय साहित्य, कला तथा जीवन में भी आमूल परिवर्तन, मौलिकता तथा नवीनता के दर्शन होने लगे थे। इस काल के महान् सर्जकों ने भी मानवीय पीड़ा, उल्लास और राष्ट्रीय कार्यकलापों को मध्ययुगीन विषयों से अधिक महत्व दिया था।

नवजागरण काल की सामान्य प्रवृत्तियाँ

यूरोपीय एवं भारतीय नवजागरण काल में दर्शन, भाषा, दृष्टिकोण, संस्कृति एवं राष्ट्रीय जीवन पद्धति में कुछ ऐसे सामान्य गुण तथा प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं जिनके द्वारा इस नवजागरण काल की मध्ययुग से भिन्न एक स्पष्ट पहचान उभर कर सामने आती है।

1. जीवन के प्रति प्रवृत्तिवादी बौद्धिक चिन्तनधारा : मध्ययुगीन मानव जीवन को मोक्ष-प्राप्ति और आत्मा की मुक्ति की तैयारी मात्र मानता था। नवजागरण काल में जीवन और जगत् के प्रति भौतिक वादी जीवन दर्शन और लौकिक विचारधारा का विशेष महत्व रहा। रेनेसाँ मानव सांसारिक भोग-आनंद के जीवन-सिद्धान्तों और उपलब्धियों को उत्कंठापूर्वक अपनाकर, अपने को गौरवान्वित अनुभव करने अगा। उसने भौतिक-सम्पदा के समक्ष पारलौकिक स्वर्ग-सुख को तुच्छ माना। मानव-जीवन की सार्थकता मोक्ष प्राप्ति न होकर ऐहिक सुखों की प्राप्ति समझी गयी। इस प्रवृत्तिवादी क्रान्तिकारी नवदर्शन ने यूरोप और भारत में बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में उत्क्रान्ति ला दी थी। इस नव युग में शिक्षित जन समुदाय आत्मा का हनन किये बिना भी सर्वोच्च ज्ञान का अधिकारी हो सकता था।

चार्ल्स एस० स्निमलिटन का कथन है "यदि किसी एक विशेषता से रेनेसाँ को पहचाना जा सकता है तब मेरा विश्वास है कि वह ब्रह्मांड और मानव के सम्बन्धों की बदलती अवधारणाएँ हैं।"[2]

"निवृत्तिवाद" भारतीय जीवनदर्शन और स्वभाव की मूलभूत विशेषता रही है। भारतीय ससार को स्वप्नवत् मानते हैं और इस जीवन को मोक्ष प्राप्ति का साधन। किन्तु 19 वीं शती के नव दर्शन में इह लौकिक प्रगति को महत्त्व देकर प्रवृत्तिवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया गया था। दिनकर के शब्दों में —

"असल में उन्नीसवीं सदी का नवोत्थान, भारत में प्रवृत्तिवाद का ही अनुपम उत्थान है, राम मोहन, दयानंद, रामकृष्ण, विवेकानंद और लोकमान्य तिलक ने प्रवृत्ति पर

---

1. Jakob Burckhardt, The Civilization of the Renaissance in Italy, 212, 213, 340.
2. 'If there is any characteristic by which the Renaissance can be recognised it is, I believe, in the changing conception of man's relation to the cosmos : Charles S. Sinmleton, the Idea and Ideals in the North European Renaissance.

इतना अधिक जोर दिया कि सारा हिन्दू-दर्शन प्रवृत्ति के उत्स-सा दिखने लगा —निवृत्ति की धारा में बहते-बहते हिन्दू एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचे थे, जहाँ स्वाधीनता और पराधीनता में कोई अन्तर नहीं था और न कोई अत्याचार ही ऐसा था, जिसका उत्तर देना आवश्यक हो किन्तु उन्नीसवीं सदी के भारतीय साहित्य में क्रान्तिकारी और अन्ध विरोधी स्वर बड़े जोर से गूंजने लगे। यह स्पष्ट ही गीता और वेदांत की प्रवृत्तिमार्गी टीका का परिणाम है।"[1] वस्तुतः प्रवृत्तिवादी चिन्तन के प्रसार में तत्कालीन साहित्य, पत्रकारिता जैसे कला-माध्यमों ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

2. तार्किक वैज्ञानिक दृष्टि एवं संदेहयुक्त जिज्ञासु मानसिकता को महत्त्व : पुनर्जागृत मानव की मनोवृत्ति और दृष्टि जिज्ञासु एवं विश्लेषणात्मक थी। इसी जिज्ञासा वृत्ति, स्वतंत्र तार्किक दृष्टिकोण और शंकालु मानसिकता ने हर बँधी-बंधाई मर्यादा के शिव धनुष तोड़े थे। तथा मानव विवेक को निरन्तर मांजकर उनमें नये संस्कार डाले थे। प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों एवं सामाजिक रीति-रिवाजों को आँख मूंद कर नहीं स्वीकार किया गया वरन् तर्क के निकष पर कसकर उनका सूक्ष्म वैज्ञानिक आकलन किया गया। उन्हीं पारम्परिक विश्वासों एवं लेखकों को मान्यता दी गई जिनकी प्रमाणिकता असंदिग्ध थी। उदाहरणार्थ यूरोप में लोरेंजियस भाला (Lorenzo Valla) 1407-1457 जो समीक्षात्मक ऐतिहासिक पद्धति का वास्तविक जन्मदाता था, ने प्रसिद्ध ऐतिहासिक कृति "डोनेशन ऑफ कन्सटन्टाइन" (Donation of constantine) को ऐतिहासिक एवं भाषिक आधार पर चुनौती दी और संतपाल और सेनेका के बीच तथाकथित पत्राचार को जाली घोषित किया।[2] इसी तर्किक वृत्ति और संदेहपूर्ण जिज्ञासा ने विज्ञान ऐतिहासिक आलोचना विधि, आदि हर क्षेत्र में नये मानदण्ड स्थापित किए।

19वीं शताब्दी के भारतीय नवोत्थान ने भी "मनुष्यों में सात्विक शंका की प्रवृत्ति स्फुरित कर दी थी—इस नवोत्थान से भारत का काया-कल्प हुआ है, धर्म की रूढ़ियाँ झड़ गई हैं।"[3] तत्कालीन साहित्य एवं पत्रकारिता में सनातन धार्मिक-सामाजिक चिन्तन को चुनौती देकर पूर्णरूपेण बौद्धिक एवं तार्किक आकलन के सैकड़ों दृष्टान्त मिलते हैं।

3. स्वदेशी भाषाओं का विकास : नवोत्थान काल यूरोपीय एवं भारतीय जन-भाषाओं के उन्नयन का युग था। यूरोप में जहाँ पुरातन ग्रीक रोमन भाषा एवं साहित्य का पठन-पाठन अपनी पराकाष्ठा पर था। उच्चतर साहित्य को इन्हीं भाषाओं में लिखना गौरवपूर्ण माना जाता था। वहीं आश्चर्यजनक रूप में इस काल में इटेलियन, फ्रांसीसी, स्पेनिश, जर्मन आदि जनभाषाओं में लोक-साहित्य की सराहनीय अभिवृद्धि हुई। इंग्लैंड में चौसर की 'कंटरबरी टैल्स' द्वारा अंग्रेजी जन-बोलियों का विलयन पूर्ण हुआ। इटली में

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 534-535
2. Wallace K. Ferguson, A Survey of European Civilization (third Ed. Part one to 1660) p. 334-335
3. "रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 535

दांते की 'डिवाइन कॉमेडी' स्थानीय मधुर भाषा 'टस्कन' में रचित है। जियोमानी बोकासियों की सजीव कथाएँ 'डेकामेरॉन' इटेलियन भाषा में लिखित हैं। फ्रांस के विश्व प्रसिद्ध लेखक सर बैंटीज ने 'डॉन क्विजाण्ट" नामक श्रेष्ठ ग्रन्थ स्पेनिश भाषा में लिखा।

भारत में भी जहाँ "सारा धार्मिक और उच्च-धर्म निरपेक्ष ज्ञान संस्कृत में ही निहित था"[1] फारसी देश की राजभाषा के रूप में फल-फूल रही थी किन्तु इस नवयुग में आकर हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु आदि सभी भारतीय जन-भाषाओं में उत्कृष्ट साहित्यक सर्जन, ज्ञानात्मक लेखन तथा पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ।[2] विभिन्न देशी भाषाओं के गद्य-पद्य के माध्यम से आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं आधुनिक-भावबोध को वाणी मिली। भारत की अधिसंख्य जनता देशी भाषा और जनबोलियों से ही परिचित थी अतः इन स्वदेशी भाषाओं में रचित साहित्य ने जन-मानस के ज्ञान चक्षुओं को खोल-कर अज्ञानाधंकार को दूर करने में भरपूर योगदान दिया।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में "हिन्दी भाषा और साहित्य की गतिविधि भी परंपरा छोड़कर नवदिशोन्मुख हुई।"[3] यद्यपि उसकी प्रगति का मार्ग शिक्षा आजीविका और अदालतों की राजश्रय प्राप्त भाषाएँ अंग्रेजी और उर्दू अवरुद्ध कर रही थीं फिर भी "उस काल में हिन्दी का शुद्ध साहित्योपयोगी रूप ही नहीं, व्यावहारोपयोगी रूप भी उभरा।"[4]

4. राष्ट्रीय अवधारणा एवं लोकतंत्रीय नव चेतना का उदय : "सही अर्थों में राष्ट्रों का उदय मध्ययुग की समाप्ति पर ही हुआ।"[5] अंग्रेजी राज में विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्यरत अधिकारी-विद्वान सर हेनरी कॉटन ने अपनी संस्मरण पुस्तक "इण्डियन एण्ड होम मेमोरीज" में लगभग सन् 1860 के आसपास के भारत का चित्र स्मृति पटल पर लाते हुए लिखा था "देश ऊपरी तौर पर अभी भी पुरातन मुद्रा धारण किए था। नवभारत अभी भविष्य के गर्भ में था। पूर्व में जागृति का नामोनिशां न था। समुदाय और जातियों में राष्ट्रीयता का कोई विचार नहीं पनपा था।"[6] अतः भारत में "आधुनिक

---

1. ओ मेली (सम्पादक), मार्डन इंडिया एण्ड दि वेस्ट, (1941), पृ० 134
2. "देश की अन्य प्रमुख भाषाओं (बंगला, गुजराती, मराठी, तमिल, उर्दू आदि) के गद्य साहित्य की ही तरह हिन्दी का गद्य साहित्य भी हमारे राष्ट्रीय जागरण के युग की पैदावार है।"—शिवदान सिंह चौहान, हिन्दी गद्य साहित्य, प्रस्तावना, पृ० 5
3. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य (1850-1900) (तृतीय संशोधित सं० 1954), पृ० 94
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 415
5. ई० ए० कार, उद्धृत ए० आर देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० 1
6. Sir Henry Cotton, Indian and Home Memories, p, 63-64

राष्ट्र"[1] के रूप में जन-संगठन की चेतना और एकीकरण के भाव उत्तर उन्नीसवी शताब्दी के 'नवजागरण काल' में उत्पन्न हुए।

"राष्ट्रीयता भारत के लिए नवीन विश्वास था। उसके पहले इस देश में यह बात अपरिचित थी।"[2] यद्यपि प्राचीन भारत में भी प्रबुद्ध राष्ट्रीयता की प्रामाणिक सामग्री[3] और अनेक उपकरण— देश भक्ति, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अखण्डता, भाषा-धर्म की मूल एकता आदि प्रचुर मात्रा में मिलती है, 'राष्ट्र' राज्य के अर्थ में प्रयोग होता था जिसमें जन, विश और ग्राम होते थे किन्तु फिर भी 19वींशती से पूर्व मध्ययुग में भारतीयों में अपने राष्ट्र के प्रति अविचल, असंदिग्ध निष्ठा एवं पूर्ण समर्पण-भाव का अभाव हो गया था, "धर्म-जाति-निरपेक्ष आधुनिक लोक सत्ता वा राष्ट्रीयता तो उस समय हमारे देश में नहीं थी—हमारे पास वैयक्तिक सद्‌गुण थे, राष्ट्र निर्माण व स्वराज्य निर्माण के लिए आवश्यक सद्‌गुण बिल्कुल लुप्त हो गए थे।[4] अतः नवजागरण काल से पूर्व आधुनिक रूप में राष्ट्रीयता और प्रजातांत्रिक लोकसत्ता के निर्माण की परिकल्पना भारतीय मेधा नहीं कर पाई थी। निज धर्म, धन, संस्कृति के रक्षण के लिए विदेशी-विधर्मी शासन का संगठित होकर अन्त और स्वराष्ट्र पर स्वशासकों द्वारा शासन होना अनिवार्य है, इस राष्ट्रीय चिन्तन के अभाव के कारण ही भारतवासी आंग्ल-सत्ता से धर्म-रक्षण तथा धन-सत्ता प्राप्ति का झूठा आश्वासन पाकर विदेशी शासन की तन-मन-धन से सहायता करने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते थे जो उनकी राष्ट्र विरोधी मनोवृत्ति का ही परिचायक हो सकता है।

भारत में पहले से ही ग्राम-पंचायतों के सामुदायिक संगठन, न्याय-व्यवस्था तथा सार्वजनिक पदों की नियुक्ति में प्रजातंत्रात्मक लोक-सत्ता के सिद्धान्तों और संस्थाओं का लघुरूप देखा जा सकता है।[5] किन्तु नवजागरण से पूर्व भारतीय नागरिकों के मस्तिष्क में ये विचार उभरकर सामने नहीं आए थे कि परम्परागत शासक या राजा को हटाकर जनता भी राज्य-क्रान्ति करके लोक-नियंत्रित प्रजासत्ता की स्थापना कर सकती है। क्षत्रियों के समान व्यापारी (वैश्य) वर्ग भी अपने प्रतिनिधि वर्ग द्वारा सत्ता-हस्तगत कर कुशलता पूर्वक शासन चला सकते हैं। सम्भवतः यही कारण था कि प्रारम्भ में भारतीयों के मन में अंग्रेज व्यापारियों की सत्ता हड़पने की नीयत पर कभी कोई अविश्वास और संदेह उत्पन्न नहीं हुआ क्योंकि वे समझते रहे कि अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी केवल व्यापारी कम्पनी है जो भारत में अन्य सौदागरों के समान उदर-पोषण निमित्त व्यवसायिक लाभ के

---

1. (i) ए० आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० 1-2
   (ii) मधुलिमये, स्वतंत्रता आंदोलन की विधारधारा, (दिल्ली 1983) पृ० 49-50
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का उद्‌भव एवं विकास, पृ० 257
3. (क) "पृथिव्यै समुद्रपर्यन्तया एक राष्ट्र"—तैत्तरीय संहिता 7-5-18
   (ख) "श्री वैं राष्ट्रम्"—शतपथ ब्राह्मण— 6-7-3-7
   (ग) राधा कुमुद मुखर्जी, हिन्दू सभ्यता' पृ० 74-75
4. शंकर दत्तात्रेय जावड़ेकर, 'आधुनिक भारत' पृ० 16-17
5. जवाहर लाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी पृ० 301-302

लिए आई है। प्राचीन वर्ण व्यवस्था के अनुसार उनका विश्वास था कि राज्य-रक्षण क्षत्रियों का धर्म है,[1] व्यापारियों का उससे क्या लेना देना। इसी मनोवृत्ति के कारण भारतीय व्यापारी वर्ग और सामान्य जनता स्वदेश-रक्षण से सर्वथा असंपृक्त और उदासीन रहती थी। जबकि इंग्लैंड के व्यापारी वर्ग जो केवल व्यापारी नहीं थे, धीरे-धीरे व्यापार के विस्तार के बहाने परोक्ष रूप में राज्य पर नियंत्रण करते चले गए। कहा जा सकता है कि 19वीं शती में ही जागरूक होती जनता, बुद्धिजीवी और व्यापारी वर्ग ने अमेरिका, फ्रांस, इंग्लैंड में हुई जनक्रांतियों और अंग्रेजी राज के इन नए नीति-अनुभवों से प्रजातंत्रात्मक लोक-सत्ता का पाठ सीखा। अत: राजनैतिक प्रभुसत्ता एवं प्रादेशिक अखंडता सम्पन्न, आधुनिक राष्ट्र और प्रजातंत्रात्मक भाव का आविर्भाव पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था के विकास के साथ 19वीं शती के नवजागरण काल में हुआ।[2]

5. मुद्रण-संस्कृति का आविर्भाव : इस काल में प्रेस और पत्रकारिता ऐसे चमत्कारिक आविष्कार थे जिन्होंने सम्पूर्ण यूरोप और भारत के तीव्र क्रमिक विकास को सम्भव बना दिया था। इन उन्नत तकनीकी प्रेस यंत्रों तथा पत्रकारिता ने बौद्धिक-सांस्कृतिक आंदोलन, वैज्ञानिक प्रगति, ज्ञान एवं चिन्तन की परिधि को एक विस्मयकारी विस्तृत आयाम दिया था। एलिजाबेथ आइन्सटाइन की तर्कपूर्ण उक्ति है—"पन्द्रहवी शती में हुए इटेलियन पुनर्जागरण से पूर्व भी यूरोप में पुनर्जागरण के अनेक दौर आये थे लेकिन मुद्रण-संस्कृति के माध्यम मे जो उपलब्धियाँ इटेलियन रेनेसाँ ने प्राप्त कीं वे पहले पुनरुत्थानों को नहीं मिली।[3]

भारतीय नवजागरण के सन्दर्भ में भी उपर्युक्त कथन सटीक बैठता है। 'नव चेतना' के संचार-स्त्रोत भारतीय प्रेस और पत्रकारिता थीं जिसने दिग्भ्रमित जनता को गन्तव्य पथ दिखला कर एक राष्ट्रीय आवाज को जन्म दिया। पत्र-पत्रिकाओं में प्रदत्त ज्ञान के द्वारा भारतीयों ने एक अदम्य शक्ति का अनुभव किया। हिन्दी पत्रकारिता ने विदेशी शासन की कूटनीति के दुर्ग को ध्वस्त कर जनमानस में एक अभूतपूर्व जाग्रति जगा दी थी।

कहा जा सकता है कि नवजागरण और पत्रकारिता परस्पर पूरक थे जिसके गठबन्धन से स्वाधीन भारत की पृष्ठभूमि निर्मित हुई। यद्यपि 19वीं शती में जन-संस्थान के प्रमुख अंगों पत्र-पत्रिकाओं, विज्ञापन रेडियो, चलचित्र, दूरदर्शन में केवल पहले दो माध्यमों का ही विस्तार हुआ था तथापि यह अकाट्य सत्य है—"भारतीय जनता के बीच राष्ट्रीय

---

1. शंकर दत्तात्रेय जावड़ेकर; आधुनिक भारत, पृ० 17-18
2. "पूंजीवादी आर्थिक प्रतिक्रियाओं ने विभिन्न समुदायों को आर्थिक और सामाजिक तौर पर एकताबद्ध कर उनकी जगह राष्ट्रों को जन्म दिया है। इन्हीं प्रक्रियाओं ने भारतीय राष्ट्र की भी सृष्टि की है"—ए० आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० 22
3. Elizebeth, Eisenstein, Idea and Ideal in the Nortn European Renaissance (Collected Eassay, Volume II)

भाव और चेतना के उदय और उत्थान में, उनके राष्ट्रीय आंदोलन के संगठन और विकास, प्रादेशिक साहित्यों और संस्कृतियों की सृष्टि और विभिन्न देशों के साथ बन्धुत्व की स्थापना में प्रेस की बहुत बड़ी भूमिका रही है ।"[1]

1. 2. **यूरोपीय और भारतीय नवजागरण : एक समीक्षा :** यूरोप और भारत में जिस सांस्कृतिक-ऐतिहासिक बदलाव और क्रान्तिकारी नव-चेतना को नवजागरण के नाम से अभिहित किया गया है उनमें कुछ सादृश्य रेखांकित किए जाते हैं—

—दोनों ही पुनर्जागरण काल आधुनिकता के उदय और मध्ययुगीन चिन्तन के अवसान सूचक हैं।

—इन दोनों से ही वैज्ञानिक युग का शुभारम्भ हुआ, सांमती काल का अस्त हुआ।

—बौद्धिक रूप में अतीत के साहित्यिक ज्ञान-वैभव एवं कला-संस्कृति की पुनर्स्थापना हुई।

—इन दोनों ही काल में जीवन-जगत सम्बन्धी मूलभूत अवधारणाओं में मौलिक परिवर्तन हुए। एक नवीन भौतिकवादी दृष्टि, इह लौकिक दर्शन एवं स्वतन्त्र व्यक्तिवादी चेतना विकसित हुई।

—प्रेस-मुद्रण-पत्रकारिता जैसे सशक्त जनमाध्यमों द्वारा जनभाषाओं में पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं एवं अन्य ज्ञानात्मक अनूदित एवं मौलिक सामग्री के प्रकाशन से एक अभूतपूर्व जन-जागृति का संप्रेषण एवं विस्तार हुआ।

—इन में विश्व की अधिकारिक शक्तियों 'धर्म', 'चर्च,' 'राज्य', 'ईश्वर' आदि को चुनौती देकर उनको पददलित करने की कोशिश की गई। देश में आधुनिक राष्ट्रीयता एवं प्रजातांत्रिक भावों एवं विचारों का सूत्रपात हुआ।

—दोनों काल व्यापारिक पूंजीवादी व्यवस्था के जन्म, मध्यवर्गीय संस्कृति के उदय तथा सांमती-जातिवाद के अवमूल्यन के द्योतक हैं। मानव सांस्कृतिक एवं नैतिक जीवन मूल्यों के प्रति अधिक तार्किक एवं विवेकशील हो उठा। नवजागरण की प्रगति सुधारवादी आंदोलनों के रूप में हुई किन्तु उपर्युक्त सादृश्यों के आधार पर यह धारणा बना लेना उपयुक्त नहीं होगा कि यूरोपीय और भारतीय पुनर्जागरण समान हैं।

—वस्तुत: यूरोपीय रेनेसां और भारतीय नवजागरण की प्रकृति, प्रवृत्ति, परिवेश, प्रेरणास्त्रोत, दर्शन, दृष्टिकोण, आदर्शों तथा ऐतिहासिक सन्दर्भों में मौलिक-भिन्नता है जो इनको पृथक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं।

—यूरोप का पुनर्जागरण (रेनेसाँ) वहाँ के पुरातन साँस्कृतिक-साहित्यिक मूल्यों की पुनर्स्थापना, नवीन आर्थिक परिवेश और ऐतिहासिक क्रियाशीलता की उपज है। उसके घटक मूल तत्त्वों और राष्ट्रीय तन्तुओं का निर्माण वहाँ की परिवर्तित परिस्थितियों और अदम्य गत्यात्मकता से हुआ। जबकि भारतीय नवजागरण यूरोपीय सभ्यता-संस्कृति, ईसा-धर्मनीति एवं अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुतापूर्ण संघात और प्रतिक्रिया की परिणति

---

1. ए० आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 189

है। वह विदेशी साम्राज्यवाद और यूरोपीय सभ्यता की चुनौती का प्रत्युत्तर है।

—यूरोप में "राष्ट्रों के रूप में जनसमुदायों का एकीकरण ऐतिहासिक प्रक्रिया की परिणति है।"[1] जबकि आधुनिक भारत का राष्ट्र के रूप में एकीकरण ऐतिहासिक प्रक्रिया से अधिक यूरोपीय आदर्शों, शिक्षा और सभ्यता के विरुद्ध क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रतिफलन प्रतीत होता है।

—भारत में राष्ट्रीय अस्मिता की धारणा यूरोप से इस रूप में भिन्न थी कि यूरोप के देश किसी विदेशी सत्ता के अन्तर्गत पराधीन नहीं थे जबकि भारत में अंग्रेजी शासकों और भारतीय जनता की राष्ट्रीयता भिन्न थी। यहाँ पुनर्जागृत राष्टीय भावना भारतीयों में "निज देश-निजी राज्य या 'स्वदेश-स्वराज' के विचार जगाती थी। उन्हें जातीयता, एक देशीयता और सांस्कृतिक भावनाओं की नींव पर एकतावद्ध करती थी।"[2] भारतीय नवजागरण की अवधारणा का सम्बन्ध वस्तुतः निज भाषा, निज संस्कृति, निज उत्पादन-विनियोग एवं निज राष्ट्र के उन्नयन तथा स्वाधीनता के साथ जुड़ा हुआ था। "इसकी प्रकृति निश्चय ही यूरोपीय रेनेसाँ से भिन्न थी। यूरोप में नवजात पूँजीवाद तत्त्वों के नेतृत्व में सांमती शक्तियों के खिलाफ संघर्ष हुआ जबकि भारत में साम्राज्यवादी और सांमतवाद गठजोड़ के विरुद्ध संघर्ष की छाप उस युग में प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं में दिखाई पड़ती है।"[3]

यूरोप में ईसाई धर्म, चर्च आदि के सबल धार्मिक-चिंतन के दायरे को लांघ कर रचनात्मक एवं क्रियात्मक ज्ञान-विज्ञान की नींव पर यूरोपीय नवनिर्माण के नए आधारों की तलाश जारी थी। भारत में धर्म-दर्शन-आध्यात्मिकता को ही पुनर्व्याख्यायित करके नव-जागृति एवं सांस्कृतिक-सुधार का सोपान एवं आधार बनाने की लालसा रही।

यूरोप से भिन्न भारतीय नवजागरण की आत्मा मूलतः आध्यात्मिक थी। "भारत राष्ट्र को एक दैवी सत्ता, राष्ट्रीयता को एक आध्यात्मिक आदर्श तथा मातृभूमि की मुक्ति का एक धर्म-साधन माना है।"[4] भारतीय चिन्तक श्री अरविन्द की भी यही धारणा थी "राष्ट्रीयता केवल एक राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है। राष्ट्रीयता एक धर्म है जो ईश्वर प्रदत्त है, राष्ट्रीयता एक सिद्धान्त है जिसके अनुसार हमें जीना है।"[5]

भारत में 'नवजागरण' यूरोप के समान इन्द्रिय जनित अनुभवों और बौद्धिक जागरूकता से ही स्पंदित नहीं था, वह नवीन आधुनिक चिन्तन, धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलन तथा गौरवशाली आध्यात्मिक शक्तियों का पुंजीभूत रूप था।

—यूरोपीय पुनर्जागरण में पुरातन ग्रीक-लैटिन सभ्यता, ज्ञान तथा कला आदि से प्रेरणा ग्रहण की गई थी। भारत में अतीत के श्रेष्ठ मूल्यों, महान वाङ्मय की

1. देसाई, ए० आर०, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृ० भूमि, पृष्ठ 22
2. विशाल भारत, अप्रैल, 1936, पृ० 505
3. हरप्रसाद गोड़; सरस्वती और राष्ट्रीय जागरण, पृ० प्रस्तावना (vii)
4. डा० कर्णसिंह, भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत, पृ० 84
5. स्पीचेज, श्री अरविन्द, पृ०, 6 उपरिवत्

उपलब्धियों एवं ऐतिहासिक पौराणिक सन्दर्भों को युगीन यथार्थ के अनुरूप पुनर्स्थापित और पुनर्व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया।[1] इनका प्रमुख उद्देश्य पराधीन भारतीय जनमानस को आत्मग्लानि, विवशता और यूरोपीय सभ्यता तथा पश्चिमी मानसिकता से उबारना था। कहा जा सकता है कि यूरोपीय रेनेसाँ क्रान्तिकारी अधिक था, जबकि भारतीय 'नवजागरण' राष्ट्रीय-उत्थानवादी।

—यूरोप में संगठित चर्च, ईसा-धर्म और मठवाद से मुक्ति पाने की तीव्र उत्कण्ठा है। "यूरोप का मध्ययुगीन धर्म, रोमन कैथोलिक धर्म, समूचे ईसाई संसार सांस्कृतिक एकता का सूत्र था, लेकिन यह सांमतशाही का पोषक था—सांमती राज्य-व्यवस्था को समर्थन प्रदान कर रोमन चर्च राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना में अड़चनें खड़ी कर रहा था—इसलिए यूरोप के देशों में जनता के राष्ट्रीय जागरण ने सांमती धर्म-तन्त्र के विरुद्ध धार्मिक संघर्ष का रूप लिया।"[2] यूरोप में यह मूलतः सांमत विरोधी जागरण था

प्रोटेस्टेन्ट धर्म-सुधार के दृष्टिकोण से मौलिक मतों और व्यक्तिगत विवेक का उदय हुआ। ईसाई धर्म ग्रन्थों 'बाइबिल' आदि की खुल कर समालोचना की जाने लगी।

—भारत में धर्म और आध्यात्मिक भावना को ही संगठित नवजागृत उदात्त मजहब का रूप देने का प्रयास किया गया जिसके स्पष्ट प्रमाण ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज तथा रामकृष्ण मिशन आदि हैं।[3]

—यूरोपीय रेनेसाँ में धर्म तथा चर्च सुधार की प्रेरणा और हेतु वहाँ के नए परिवेश, पूँजीवादी अर्थ-तन्त्र तथा राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना में है। भारत में 'नवजागरण' की प्रेरणा परिवर्तित अर्थ तन्त्र के साथ-साथ ईसाई धर्म-तन्त्र तथा यूरोपीय कूटनीति तथा सभ्यता के आक्रमक रूप से लोहा लेने तथा उससे निज संस्कृति की रक्षा तथा विदेशी दोहन से त्राण पाने में है।

—यूरोप में चर्च-शक्ति और राष्ट्रीय राज्य-व्यवस्था का संघर्ष है जबकि भारत में यह संघर्ष बहुआयामी और बहुमुखी है। यहाँ एक ओर राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद में टकराव है, दूसरी ओर सांप्रदायिकता और राष्ट्रीयता का संघर्ष है, तीसरी तरफ यूरोपीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति के बीच जबर्दस्त तनाव की स्थिति है, चौथी ओर सनातन परम्परावादी और आधुनिक प्रगतिशील बौद्धिक शक्तियों के बीच उठता अन्तर्द्वन्द्व है।

—यूरोपीय पुनर्जागरण में "क्लैसिज्म के पुनरूत्थान के साथ मानववाद की विचारधारा भी पनपी। मानववाद का सिद्धान्त था कि लौकिक मानव और प्रत्यक्ष के

---

1. भारतीय चिन्तन "लगभग विगत पन्द्रह शताब्दियों के दर्शन, विज्ञान और संस्कृति को आधुनिक धाराओं के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करता आया है।"···विश्वनाथ नरवणे, माडर्न इण्डियन थाट, पृ० 8
2. देसाई, आर०, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० 228
3. भट्ट, गौरी शंकर, भारतीय नवजागरण : प्रणेता तथा आंदोलन, पृ० 11-12

ऊपर अलौकिकता, धर्म और वैराग्य को स्थान नहीं मिलना चाहिए।"[1] अतः यूरोपीय रेनेसाँ में 'मानव' को धुरी मान कर धर्म से अधिक मानवीय गरिमा, ज्ञान, व्यक्ति के बहुमुखी विकास और स्वतन्त्र चेतना को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया। जबकि भारतीय नवजागरण 'मानवतावाद' व्यक्तिवादी कम है, राष्ट्रीय अधिक। वह 'राष्ट्रीय' पहले है, मानवतावादी बाद में। यहाँ व्यक्ति में 'भारतीयता' तथा 'राष्ट्रीयता' की गौरव-गरिमा और राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं को ही जागृत कर उनका प्रतिरोपण करने का प्रयास किया गया।

—यूरोप की इहलौकिकता और मानवतावादी दृष्टिकोण का नाता प्रोटेस्टेन्ट मतवाद से जुड़ा माना गया था। वहाँ रेनेसाँ आर्थिक-सांस्कृतिक परिवर्तित परिस्थितियों की स्वतः परिणति है। भारतीय नवजागरण में 'मानवतावाद' के प्रेरणा-स्त्रोत यूरोपीय ज्ञान, शिक्षा, भारतीय-शोध और सनातन धर्म की पुनर्व्याख्या आदि रहे थे।

—यूरोपीय रेनेसाँ काल से जहाँ समस्त यूरोप का व्यक्तित्व ईसाई संघ, चर्च आदि के पिंजड़े तोड़ कर, बाहर पंख तोल कर मुक्त गति एवं नई शक्ति से उड़ाने भरने लगा था। रेनेसाँ के नव प्रभात के उदय के साथ यूरोप में आधुनिक क्रान्तिकारी औद्योगिक-वाणिज्यिक समृद्धि, वैज्ञानिक चमत्कार एवं कलात्मक संस्कृति को पराकाष्ठा पर पहुँचाने के लिए मुक्त द्वार खुल गया था। वहीं भारतीय नवजागरण काल में ब्रिटिश साम्राज्यवादी अर्थ तन्त्र के आर्थिक दोहन और औपनिवेशिक अर्थ व्यवस्था के विध्वसंक अभिशाप ने भारत उद्योग, प्रशासन, विज्ञान आदि समूचे क्षेत्रों की स्वाभाविक प्रगति और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में रोड़े अटकाए तथा उसकी सहज उर्जाशक्ति और प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में नवचेतना का उदय हुआ।

—यूरोप में पुनर्जागरण-सुधारवाद-क्रान्ति का ऐतिहासिक क्रम रहा। भारत में धार्मिक सुधार, पुनर्जागरण साथ-साथ कदम से कदम बढ़ाकर राष्ट्रीय स्वाधीनता की मंजिल की ओर उन्मुख हुए। यूरोप का रेनेसाँ मध्ययुगीन प्रवृत्तियों से अलग है। भारत का 'नवजागरण' अपनी मनोवृत्ति और प्रकृति में कई दिशाओं में मध्ययुगीन और सांमती है, उसका अभिनवीकरण अंशतः ही हो पाया।

—यूरोपीय रेनेसाँ में शिक्षा, प्रेस और पत्रकारिता आवश्यकतानुसार रेनेसाँ के नवसर्जित आदर्शों के अनुरूप ढलती रहीं। भारत में पश्चिमी शिक्षा ज्ञान-विज्ञान और प्रेस ने नवजागरण को प्रभावित कर यूरोपीय आदर्शों के अनुकूल ढालने का प्रयास किया। यहाँ तक कहा गया कि भारतीय नवजागरण यूरोपीय शिक्षा और आचरण संहिता से संचालित पश्चिमी आदर्शों का प्रसार मात्र है। किन्तु भारतीय पुनर्जागरण की मूल जड़ें भारत की धरती में ही रची-बसी थीं। पाश्चात्य चिंतन, शिक्षा तथा प्रेस आदि ने उन जड़ों को पुष्ट करने के लिए खाद-पानी देने का कार्य अवश्य किया।

—यूरोप का बुद्धिवादी वर्ग 'लेजर क्लास' मानवतावादी, बौद्धिक, सर्जनात्मक

1. डा० अंब प्रसाद, हिन्दी विश्वकोश (खण्ड 7) पृ० 241

एवं तार्किक प्रज्ञा से युक्त है। भारत का बुद्धिजीवी एक साथ मानवतावादी राष्ट्रवादी, सामंती, प्रतिक्रियावादी, धार्मिक मध्यम वर्ग है। नीत्शे ने जहाँ भविष्य का 'सुपर मैन' ढूँढ़ा, उनके ही समकालीन जेकोब बुर्कहर्ट ने अतीत के सुपर युग रेनेसाँ इटली को खोज निकाला था।[1]

अत: यूरोप में रेनेसाँ का मानव-आदर्श सार्वभौम, बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न, सौन्दर्य-बोध युक्त, बौद्धिक अभिजात वर्गीय सुपर मानव है। भारत का मानवी-आदर्श राष्ट्रीय-नवोत्थान को समर्पित, जूझता-टूटता', कर्तव्यनिष्ठ, दायित्वपूर्ण ऐसा सत्याग्रही जननायक है जो आधुनिक पाश्चात्य बोध और भारतीय परंपरा में संतुलन कायम करता रहता है, पर समर्थन 'भारतीयता' का करता है।

—भारतीय मानव भारत और भारतीयता के दायरे तक ही परिसीमित रहता है। वह यूरोप के मानव के समान सार्वभौम नहीं है।

—आधुनिकता के सन्दर्भ में यूरोपीय 'रेनेसाँ' आधुनिक है।[2] भारतीय 'नव-जागरण' यूरोपीय विचारकों के आधुनिकता के निकष पर पूर्णत: खरा नहीं उतरता। भारत में यह 'पुनर्जागरण' नहीं, वरन् राष्ट्रीय नवजागरण था जिसमें सांस्कृतिक-सामाजिक पुनरुत्थान, राजनीतिक उन्नयन, पश्चिमी ज्ञान का मिला-जुला स्वर विद्यमान था।

अत: भारत और यूरोप का इतिहास, परिवेश और सन्दर्भ अलग रहे। फलस्वरूप राष्ट्रीय नवजागरण पश्चिमी रेनेसाँ से भिन्न रूप में विकसित हुआ। यद्यपि मूल चेतना दोनों की एक समान रही।

1.3. भारतीय नवजागरण : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1.3.1. उन्नीसवीं शती पूर्व भारत में नवजागरण के सोपान—प्रत्येक राष्ट्र की जीवनधारा में ज्वार-भाटे की तरह उत्थान-पतन-पुनरुत्थान का अनवरत क्रम चलता रहता है। विकट अन्धकार के पश्चात् पौ फटती आशा की किरण, मृत होते समाज में उसका पुनर्जीवन, हर ठहराव-टूटन-अवरोध के बाद चमत्कारिक आत्मविश्वास और जीवन्त स्फूर्ति की अलौकिक लहर को बार-बार भारतीय इतिहास में भी देखा जा सकता है। "कभी हिन्दुस्तानी जिन्दगी की धार मंद पड़ जाती है, मुर्दा सदियों के बोझ को जैसे-तैसे ढोते हुए लोग मानो गुजरे जमाने में ही रहते हैं।...उन पर एक तरह की बेहोशी छा जाती है किन्तु...समय-समय पर पुनर्जागृति की कौंध उठी हैं और इनमें से कुछ बड़ी चमकदार और देर तक बना रहने वाली रही है।"[3]

उत्तर उन्नीसवीं शती के 'जागरणकाल' में परतन्त्र भारतीय लोक-मानस में जो नव जागृति और अनुपम आत्म-गौरव एवं आत्मविश्वास के भाव उदित हुए थे, वे भारतीय

---

1. Bush, M. L, Renaissance and Reformation and the Outer World, p. 149
2. भट्ट, गौरीशंकर, भारतीय नवजागरण : प्रणेता एवं आंदोलन, पृ० 12
3. जवाहरलाल नेहरू—हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० 53

इतिहास में पहले चमत्कारिक क्षण नहीं थे। इससे पूर्व भी भारतीय समाज ने विभिन्न संस्कृतियों के संपर्क-द्वन्द्व-समन्वय के फलस्वरूप नवचेतना का अनुभव किया था। श्री रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में "भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रान्तियाँ हुई हैं।··· पहली क्रांति तब हुई, जब आर्य भारतवर्ष आये अथवा जब भारतवर्ष में उनका आर्येतर जातियों से संपर्क हुआ।··· आर्य तथा आर्येतर संस्कृतियों के मिलन से जो संस्कृति उत्पन्न हुई वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी।··· दूसरी क्रांति तब हुई जब महावीर और गौतम बुद्ध ने इस स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदों की चिन्तनधारा को खींच कर वे अपनी मनोवांछित दिशा की ओर ले गये।··· तीसरी क्रांति उस समय हुई, जब 'इस्लाम' विजेताओं के धर्म के रूप भारत पहुँचा और इस देश में हिन्दुत्व के साथ उसका संपर्क हुआ और चौथी क्रांति हमारे अपने समय में हुई, जब भारत में यूरोप का आगमन हुआ और उसके संपर्क में आकर हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों ने नवजीवन का अनुभव किया।"[1]

1857 का महा विद्रोह—डा० राम विलास शर्मा ने भारतीय नवजागरण का उद्भव 1857 ई० के महाविद्रोह से जोड़ते हुए इसे साम्राज्य विरोधी-जन जागरण कहा है। 1857 ई० का विद्रोह केवल सिपाही बलवा या गदर मात्र नहीं था। आधुनिक इतिहासकार भी इसे ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर 'प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम' मानते हैं[2] जिसका दूरगामी प्रभाव सम्पूर्ण देश में दमन के रूप में अनुभव किया गया था। यद्यपि भारतेन्दु युग की पत्र-पत्रिकाओं में इस महाविद्रोह की चर्चा दबे स्वर में की गई थी क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने समय-समय पर अनेक प्रेस एक्ट और कठोर अधिनियम पारित किये थे। 1857 ई० में छपे इश्तेहारों और पत्रिकाओं की मुद्रित सामग्री में तत्कालीन देशव्यापी जन-जागरण के बीज प्रस्फुटित होते हुए स्पष्ट देखे जा सकते हैं।[3]

किन्तु भारत की भूतपूर्व क्रांस्कृति क्रांतियों और उन्नीसवीं शती के राष्ट्रीय नव-जागरण में कुछ मूलभूत अन्तर थे :

1. प्राय पहली सभी सांस्कृतिक क्रांतियों ने भारतीय जीवन-दर्शन, धार्मिक पद्धतियों तथा समाज पर गहरा असर डाला था किन्तु भारत के सनातन जीवन-दर्शन को बदलने की प्रक्रिया 19 वीं शती के नवजागरण से ही प्रारम्भ हुई जिसमें आध्यात्म से अधिक भौतिक ज्ञान, संस्कार से अधिक विवेक तथा अलौकिक से अधिक मानवतावादी चिंतन को महत्ता दी गई।

2. आधुनिक विचारकों का मत है कि समाज के मूलभूत नवीनीकरण के आधार-भूत तत्त्व आर्थिक होते हैं।[4] भूतपूर्व क्रान्तियों ने भारतीय समाज के ऊपरी ढाँचे को ही बदला था। अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत पहली बार पुरातन आर्थिक आधार-स्तम्भों-आत्म-

---

1. रामधारीसिंह दिनकर : 'संस्कृति के चार अध्याय', पृ० 8
2. विपनचन्द्र, भारत का स्वाधीनता संघर्ष—भूमिका भाग, प्रथम संस्करण 1990,
3. देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ में 1857 ई० के एक इश्तेहार की प्रतिलिपि।
4. समाज के ढाँचे को बदलने वाले मुख्य कारण आर्थिक होते हैं, सांस्कृतिक गौण होते हैं।"—डा० बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 25

निर्भर ग्राम-व्यवस्था, जमीन का सामुदायिक स्वत्व, कृषि-उद्योग के पारस्परिक समन्वय, पंचायती न्याय-व्यवस्था आदि को ध्वस्त करके उनके स्थान पर पूँजीवादी औपनिवेशिक अर्थ-व्यवस्था स्थापित की गई। "भारत में अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व के विस्तार की दिशा में उठाया गया हर कदम पुरानी अर्थ-व्यवस्था के विघटन और नए आर्थिक रूपों के उन्नयन की दिशा में ही अलग कदम था।"[1]

3. भारत में जागृति के पहले दौरों को आधुनिक मुद्रण-प्रेस-पत्रकारिता आदि संचार साधनों की शक्ति नहीं मिली थी जबकि उन्नीसवीं शती के नवोत्थान को इन आधुनिक उन्नत उपादानों के माध्यम से चरमोत्कर्ष और विस्तृत आयाम मिला।

4. आधुनिक अर्थ में 'राष्ट्रीयता' और 'राष्ट्र' की चेतना का विकास 19वीं शती के नवजागरण से प्रारम्भ हुआ तथा भारत में लोकसत्तात्मक आधुनिक प्रजातंत्र की राजनीतिक अवधारणा भी इसी काल में उदित हुई।

5. पहले पुनर्जागृत-कालों में जनता का बहुत बड़ा हिस्सा अप्रभावित रह जाता था क्योंकि विचारकों और जनसामान्य के बीच गहरी बौद्धिक खाई बनी रहती थी किन्तु राष्ट्रीय नवजागरण से आम मध्यम-निम्न-वर्ग का जीवन भी अछूता नहीं रह पाया था। युगों से उपेक्षित नारी तथा अछूत वर्ग की पुनर्जागृति-शिक्षा आदि पर भी जोर दिया गया। आत्मोन्नति से अधिक समाजोद्धार तथा राष्ट्रोन्नति को महत्त्व मिला। अत: 19वीं शती के रेंनेसाँ का स्वरूप एवं दृष्टिकोण आधुनिक अर्थों में राष्ट्रीय था।

1.3.2 विविध स्रोत

राष्ट्रीय नवोत्थान को अनेक स्वदेशी-विदेशी स्रोतों से गहराई और ताकत मिली थी। 19वीं शती के संक्रान्ति काल में जब निजी आस्था तथा निजी अस्मिता के टूटने का क्रम जारी था, उन गहन अन्धकार के क्षणों में भी कुछ ऐसे प्रकाशमान घटक थे जिनसे नव आशा, पुनर्जीवन तथा नवतेज विकीर्ण होने लगा था। भारतीय जीवन पूर्ण टूटने से बचकर पुन: सरिता के समान लक्ष्य की ओर उन्मुख हो गया था। प्रमुख स्रोतों की भूमिका कुछ इस प्रकार रही :

1. प्राच्य समृद्ध वाङ्मय एवं संस्कृति

भारत की सांस्कृतिक चिरंतनता के प्रमुख स्रोत प्राचीन वाङ्मय, प्रौढ़ दर्शन, सांस्कृतिक-आध्यात्मिक मूल्य तथा गौरवपूर्ण उच्चादर्श रहे हैं। आचार्य केशव प्रसाद मिश्र के अनुसार, "नवचेतना का आधार राष्ट्र विशेष के अतीत की गहराई होती है जिसमें परम्परा के अधिकतम तत्त्व जीवित रहते हैं। वे तत्त्व जब मुखर होते हैं तब उस राष्ट्र की सहज शक्ति भगीरथी की भाँति उद्दाम बनकर प्रवाहित होने लगती है।"[2]

19वीं शताब्दी में पाश्चात्य एवं प्राच्य अध्येताओं में अंग्रेज विद्वानों के ही नहीं, जर्मन, फ्रांसीसी, अमेरीकी तथा भारतीयों ने भी अतीत के अगाध ज्ञान के अनावरण,

---

1. ए० आर० देसाई, पूर्व उद्धृत, पृ० 27
2. अर्जुन तिवारी—स्वतन्त्रता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता (भूमिका भाग)

पुनर्मूल्यांकन एव अनुवाद कार्य में अविस्मरणीय कार्य किया। उदाहरणार्थ जर्मन विद्वानों में शोलिंग, काट, शिलर, पिशेल, बोर्टलिंग, पालड्यूसन आदि का उपनिषदों पर तथा लुदाविग, बेवर तथा आर० पिशेल आदि का यजुर्वेद आदि के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। मैक्समूलर ने 1849-1875 तक सायण भाष्य सहित ऋग्वेद को 6 जिल्दों में संपादित करके प्रकाशित कराया तथा हितोपदेश, मेघदूत, धम्मपद तथा उपनिषद् आदि का अनुवाद कार्य किया। जेम्स फर्गुसन 1843 में अज्ञात पुरातत्त्व सामग्री प्रकाश में लाये। जी० बूलर (1837-1898) ने दशकुमार चरित, विक्रमांकदेव चरित, पंचतंत्र का संपादन तथा 'एनसाइक्लोपीडिया आफ इण्डोआर्यान् रिसर्च' का प्रणयन किया।

फ्रांसीसी विद्वानों में यूजेन बनीफ़ ने महायान बौद्ध ग्रंथ 'सद्धर्म पुण्डरीक' का अनुवाद किया। बौप ने 1816 में संस्कृत भाषा-विज्ञान, व्याकरण तथा कोश ग्रंथ का निर्माण किया। सिल्वेन लेवी तथा सर अरेल स्टाइन ने देवनागरी में उत्कीर्णित शिलालेखों तथा मठों की सचित्र भित्तियों की जानकारी उपलब्ध करायी। अमेरिकी प्राच्य विद्या प्रेमी विलियम व्हिइटनी (1827-1894) ने 'अथर्ववेद' पर भाष्य तैयार किया तथा संस्कृत ग्रामर पर प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना की। शेजी ने 1823 ई० में 'इंडियन लाइब्रेरी' पत्रिका निकाली।

आंग्ल विद्वानों में सर विलियम जोन्स ने 1774 में 'एशियाटिक सोसायटी' की स्थापना कर संस्कृत के हस्तलिखित ग्रंथों का पुनरुद्धार कार्य किया। जोन्स ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' (1779) 'मनुस्मृति' (1792), 'ऋतुसंहार' का अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया। अन्य आंग्ल विद्वानों में हेनरी टामस कोलब्रुक (1768-1837), अलेक्ज़ेंडर हैं। मिल्टन आदि ने भारतीय धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैदिक संस्कृति पर खोजपूर्ण लेख लिखे। किन्तु ये सभी कार्य विदेशी भाषाओं में हुए।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की संस्कृति गत्यवरुद्ध थी।[1] "पाश्चात्य इतिहास, साहित्य, संस्कृति और सभ्यता की उच्चता को देखकर भारतीय बुद्धिजीवी अपने इतिहास का हेय तथा गँवारू समझने लगे थे।[2] आत्महीनता के इस दबाव को दूर करने के लिए भारतीय विद्वानों ने भी तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों श्रेष्ठ ग्रंथों तथा साहित्य का हिन्दी, मराठी, बंगला आदि भाषाओं में भाषान्तर एवं पुनर्व्याख्या प्रकाशित की थी। तिलक ने गीता विषयक ग्रंथ 'कर्मयोगशास्त्र' में प्रकाशित की। उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण प्राच्य-विद्या के अनुसंधान-अनुवाद कार्यों से परतन्त्र भारतीयों में खोया आत्मविश्वास, शक्ति तथा आत्म-गौरव जागा। राष्ट्रीयता को नया आयाम मिला। पणिक्कर के शब्दों में—"बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक—राष्ट्रीयता का एक नया स्वरूप निखरा। ऐसा मुख्यत: यूरोपीय विद्वानों के कार्यों का प्रतिफल था और हिन्दू समझ गये कि हमने संसार के दर्शन में योग दिया है।"[3]

1. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ० 12
2. 'हरप्रसाद गौड़' : सरस्वती और राष्ट्रीय जागरण, पृ० 31
3. पणिक्कर, के० एम, सोर्सेस आफ ट्रेडिशन, पृ० 661

2. राष्ट्रीय संस्थाएँ एवं नेतृवर्ग

राष्ट्रीय नवजागरण के अंकुर पहले क्षेत्रीय, वर्गीय तथा प्रान्तीय संस्थाओं के रूप में फूटे। प्रारम्भिक नव-चेतना फूंकने वाली संस्थाओं आत्मीय सभा (1828) साहित्यिक 'सोसाइटी फार दि एक्वीजीशन ऑफ जनरल नालेज' (1838) 'पैट्रियाटिक एसोसियेशन'[1] (8 फरवरी, 1839) 'देश-हितैषिणी सभा'[2] (3 अक्टूबर, 1841) आदि द्वारा राष्ट्रीय समस्याओं—प्रेस की स्वतन्त्रता, सरकारी विभागों में बेगार, धार्मिक, सामाजिक सुधार पर विचार-विमर्श होता था। द्वारकानाथ ठाकुर द्वारा स्थापित बंगाल की 'ब्रिटिश इंडिया सोसायटी' (20 अप्रैल, 1843) 'जमींदार सभा' (1848) आदि की स्थापना उच्च संभ्रांत वर्ग को एक राजनीतिक दायरे में बाँधने तथा कानून अधिकारों के विषय में सूचनाएँ संप्रेषित करने के उद्देश्य से हुई थी। 'ब्रिटिश इंडिया एसोसियेशन' (1851) का प्रमुख ध्येय "ब्रिटिश जनता को ब्रिटिश प्रशासन के सम्बन्ध में भारतीय जनता की भावनाओं से अवगत कराना था।[3] दादा भाई नौरोजी तथा फर्दून जी द्वारा प्रारम्भ की गई 'बम्बई एसोसियेशन' (1852), सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा आनन्द मोहन बोस द्वारा स्थापित 'इण्डियन एसोसियेशन' (1876) आदि का उद्देश्य राजनीतिक जागरण और शासक-शासितों के मध्य सेतु का कार्य करना था। 'इण्डियन एसोसियेशन' के मुख-पत्र बंगाली ने सुझाव दिया था 'मुख्य प्रान्तीय शहरों में सार्वजनिक सभाएँ हों जिनमें भारतीय प्रश्नों पर विचार हो—सारे देश में परिपत्र बाँटे जाएँ—भारतीय जनता के स्वीकृत मित्रों और संस्थाओं को एक सूत्र में बाँधा जाए और एक मंच पर लाया जाए।[4] 'कविवचन सुधा' के अनुसार 1884 ई० तक 43 स्वदेशीय संस्थाएँ जन-जागृति फैला रही थीं।[5]

इसके अतिरिक्त 'पूना सार्वजनिक सभा' (1870) ने 'मद्रास में, 'महाजन सभा' (1878) के मुख पत्र क्रमशः केसरी, मराठा, न्यू इंगलिश स्कूल (1880) तथा 'हिन्दू' ने दक्षिण में नव ज्ञान ज्योति आलोकित की। अतः कांग्रेस के उदय से पूर्व ही राजा राममोहन राय, द्वारका नाथ ठाकुर, सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी, नौरोजी, आगरकर, चिपलूणकर, लोकहितवादी आदि ने भारतीय राजनीति तथा आर्थिक नीति की सशक्त आधार-शिला रख दी थी।

---

1. पैट्रियाटिक एसोसियेशन का उद्देश्य यह दिखाना है कि भारत एक राष्ट्र है— इंगलिशमैन, 11 फरवरी, 1839
2. नागरिक स्वाधीनता के चले जाने से सुख उसी प्रकार चला जाता है जैसे काया के चले जाने से छाया। संवाद प्रभाकर तथा बंगाल हरकारु, 6 अक्टूबर, 1841।
3. पुनर्उद्धृत डा० ताराचन्द, पूर्व उद्धृत, पृ० 464
4. बंगाली, 12 अप्रैल, 1879
5. कविवचन सुधा, 28 फरवरी, 1884, पृ० 5-6

उन्नीसवीं शती का नेतृवर्ग उदार याचना-नीति में आस्था व्यक्त करने के बावजूद अदम्य राष्ट्र भक्त तथा दृढ़ चरित्र से युक्त था। उसमें जनता को संगठित, प्रशिक्षित तथा जागृत करने की तड़प और लगन विद्यमान थी। राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में विवियन डिरोजियो के एकेडेमिक एसोसियेसन (1828) तथा एलिफिंस्टन इन्स्टीट्यूट (1834) के यंग बांबे, यंग बंगाल, यंग मद्रास आदि युवा संगठनों की भूमिका को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। 1857 के स्वातंत्र्य समर के रण-बांकुरों तात्या टोपे, नाना साहब, झांसी की रानी आदि तथा अजीमुल्ला खां बेदार बख्त जैसे समर्पित पत्रकारों के बलिदान ने भारतीयों में नया साहस और गौरव स्फुरित कर दिया था।

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना : मिथक और सच—1 मार्च, 1883 ई० में कलकत्ता यूनिवर्सिटी के छात्रों के नाम पत्र में ए० ओ० ह्यूम ने भारतीय जनता के लिए एक राजनीतिक संगठन बनाने की अपील की थी।[1] 'इलबर्ट बिल विवाद' (1883 ई०) और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को 'इंडियन नेशनल कान्फ्रेन्स' (1884) से संगठन की राजनीतिक चेतना प्रबलतर हुई। औपनिवेशिक सत्ता के जुल्म-दमन-अन्याय तथा अकालों ने भारतीय असंतोष को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया था। फलस्वरूप 1885 ई० में ह्यूम, डब्ल्यू० सी० बनर्जी, तेलंग, तैयब जी आदि 72 प्रबुद्ध भारतीयों के प्रयासों से लार्ड लफरिज के मार्ग दर्शन में 'राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना हुई।[2] कांग्रेस की शुरूआत तो जी-हुजूरी से हुई थी, वही कांग्रेस एक रोज गैर कानूनी करार कर दी गई।[3]

कांग्रेस की स्थापना 'सुरक्षावाल्व' के मिथक के साथ जोड़ी जाती रही है। इस मिथक के अनुसार ए० ओ० ह्यूम ने जनता के बढ़ते रोष-असंतोष की संवैधानिक ढंग से निकासी के लिए 'राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना की। इस मिथक को ऐतिहासिक प्रामाणिक साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने के लिए 'सात खंडों वाली गोपनीय रिपोर्ट' का उल्लेख किया है "मुझे इस रिपोर्ट के कई बड़े खंड दिखाए गए जिनमें छोटी-बड़ी ढेर सारी प्रवष्टियाँ थीं। ये या तो इन सूचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद थी या अँग्रेजी में उन्हें संक्षेप में लिख दिया गया था। सभी सूचनाओं को जिलेवार क्रमबद्ध किया गया था— कहा जाता है कि उस समय तीस हजार से भी ज्यादा मुखबिरों द्वारा भेजी गयी सूचनाओं के आधार पर ये असंख्य प्रविष्टियाँ इस विस्तृत रिपोर्ट में की गई थीं।"[4]

इस गोपनीय रिपोर्ट को खोज के आधार पर गुरमुख निहाल सिंह ने 1833 ई० में उसे 'सरकारी रिपोर्ट', श्री एंड्रूज और मुखर्जी ने इसे 'सी० आई० डी० रिपोर्ट'

1. विपन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता-संघर्ष
2. Britson Martin J.R. 'New India 1985 तथा Richard Siston and Stanley Wolpert, Congress and Indian Nationalism ed. page 22
3. रजनीपाम दत्त, आज का भारत, पृष्ठ, 328
4. डब्ल्यू वेडरबर्न, ए०ओ० ह्यूम, पृष्ठ 51-52 पुनर्उद्धृत, ताराचन्द भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास पृष्ठ 482

कहा, जिसे इतिहासकार आर० सी० मजूमदार, ताराचन्द ने भी मान्यता दी। रजनी पाम दत्त ने इसे 'पुलिस की गोपनीय रिपोर्ट' बताया।[1] श्री विपनचन्द्र ने साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि यह गोपनीय रिपोर्ट 'महात्माओं, गुरुओं और ह्यूम के दोस्तों ने तैयार की थी[2]

उपर्युक्त सभी मत सत्य और ऐतिहासिक तथ्य के रूप में मान्य नहीं हो सकते। वस्तुतः ये गोपनीय रिपोर्ट उपर्युक्त सी० आई० डी०, पुलिस, महात्माओं की रिपोर्ट न होकर राष्ट्रीय अभिलेखागार (नई दिल्ली) में उपलब्ध **'रिपोर्टस् आन् वर्नाक्यूलर-न्यूजपेपर्स'** (एन०डब्ल्यू०बंगाल, पंजाब, सेंट्रल प्रोविन्स, मद्रास, बम्बई आदि की गोपनीय रिपोर्ट्स थी।[3] इन विभिन्न प्रांतों की जिलेवार साप्ताहिक नेटिवन्यूजपेपर्स की गोपनीय जिल्दों की सामग्री पढ़कर ही ह्यूम के मस्तिष्क में कांग्रेस के जन्म का विचार 'सुरक्षा वाल्व' के रूप में कौंधा होगा। इसी कांग्रेस ने भावी राजनीति और नवजागरण का मुख-मंच बनकर राजनीतिक स्वाधीनता की चेतना विकसित की थी।

3. धार्मिक सामाजिक सुधार आन्दोलन

धर्म भारतवासियों के लिए सदियों से केवल एक संप्रदाय मात्र नहीं बल्कि जीवन की सर्वांगपूर्ण पद्धति रहा है। आधुनिक पाश्चात्य इतिहासकार ए० दे० रीनकोर्ट का कथन द्रष्टव्य है : 'जागरण उसी धरातल पर हो सकता है जिस पर चेतना अस्तित्व होता है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि गहन परिवर्तन का प्रबलतम हेतु वह परिपुष्ट दार्शनिक प्रवृत्ति तथा धार्मिक भावना ही हो सकती है जो भारत की भारतीयता का ऐसा अभिन्न अंग है कि यदि उसका लोप हो जाय तो इस देश की आत्मा ही निर्जीव हो जाय।"[4]

---

1. विपन चन्द्र, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, दिल्ली 1990, पृष्ठ 35-36 वही, पृष्ठ 40
2. वही, पृष्ठ 40
3. देखिए परिशिष्ट 1, ऐतिहासिक साक्ष्य के लिए वर्नाक्यूलर न्यूजपेपर्स' की गोपनीय रिपोर्टस् की कुछ प्रतिलिपियाँ।
4. Awakening can only take place on the plane on which consciousness still dwells. This explains that the most powerful agent of metamorphosis in depth could only be the profound philosophic bent and religious feeling which is so much part of India that its disapearance would destroy the very soul of that great country."

—Amaury Dre. Riencour t, The Soul of India, p. 227

ब्रह्मसमाज

आधुनिक नव जागृति के जन्मदाता राजा राम मोहन राय द्वारा स्थापित 'ब्रह्म सभा (1828) की स्थापना से नव सुधार जागरण युग का सूत्रपात हुआ। धर्म के क्षेत्र में राजा जी ने धार्मिक पुनर्व्याख्या, तुलनात्मक अध्ययन, चिन्तन कर उदात्त प्रवृत्तिवादी दृष्टिकोण, मानवतावादी विश्व धर्म तथा शुद्ध एकेश्वरी (हिन्दू यूनीटेरियन) पद्धति पर जोर दिया। भारतीय समाज को निवृत्ति के मार्ग से हटाकर उसे कर्मरत भौतिक पाश्चात्य ज्ञान से संपन्न किया तथा ग्रंथ प्रामाण्यवाद का विरोध कर बौद्धिक वैज्ञानिक अनुभवगम्य ज्ञान को महत्ता दी तथा बाह्याडम्बरों मूर्तिपूजा आदि का निषेध कर शुद्ध परमार्थ वेदान्त ज्ञान पर जोर दिया।

समाज सुधार के कार्यक्रमों में उन्होंने सती प्रथा, बाल-विवाह, कन्या विक्रय तथा जाति प्रथा के विरुद्ध संघर्ष अभियान छेड़ा तथा नारी स्वातंत्र्य के समर्थन में नारी वर्ग का संपत्ति पर अधिकार बताया। पत्रकारिता के क्षेत्र में अनेक पत्रों का प्रकाशन कर प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए आवाज बुलन्द की तथा जूरी एक्ट (1827) का भी विरोध किया था।

यही 'ब्रह्मसभा' 1843 में देवेन्द्र नाथ ठाकुर का 'ब्रह्म समाज' कहलाया। केशव चन्द्र सेन के प्रवेश के पश्चात् 1866 में यह भारतीय ब्रह्म समाज दो भागों में विभाजित हो गया। 1878 में पुनः इसमें से 'साधारण ब्रह्म समाज' की शाखा फूटी। इस प्रगतिशील संगठन ने बाल-विवाह, बहुविवाह तथा पर्दा प्रथा पर रोक लगाने के लिए 1872 में नये एक्ट के लिए संघर्ष किया। केशव चन्द्र सेन के विचार पाश्चात्य संस्कृति और ईसाई धर्म से प्रभावित थे लेकिन अंग्रेजों की शोषक आर्थिक नीति का प्रतिरोध करने में उन्होंने कभी भी जरा हिचक नहीं दिखायी।[1] उन्होंने बंगला में 'सुलभ समाचार', जिसका मूल्य 1 पैसा था, प्रकाशित कर बौद्धिक जागरण फैलाया। ब्रह्म समाज ने "व्यक्ति स्वातन्त्र्य, राष्ट्रीय ऐक्य और सहकर्मण एवं सामाजिक संस्थाओं और सम्बन्धों के प्रजातंत्रीकरण के सिद्धान्तों को घोषित कर भारतीय जनता के सिए नए युग का सृजन किया। भारतीय जनता के राष्ट्रीय जागरण की यह पहली अभिव्यक्ति थी।"[2]

---

1. 'यदि भारत पर शासन करने का इंग्लैंड का उद्देश्य केवल धन कमाना है तो, मैं यही कहूँगा कि ब्रिटिश राज्य को इसी क्षण ध्वस्त कर दो'—
—सं० अतुल चन्द्र गुप्ता, स्टडीज इन द बंगला रेनेसाँ पृ० 88-89
2. (क) ए० आर० देसाई पूर्व उद्धृत, पृ० 231
(ख) "ब्रह्मसमाज ईसाई, हिंदुत्व के युद्ध का पहला मोर्चा था, जिसमें हिन्दुत्व कुछ लजाया हुआ प्रतिपक्ष की प्रबलता से आतंकित था।"
—रामधारी सिंह दिनकर, पूर्व उद्धृत, पृ० 551

प्रार्थना समाज

केशवचन्द्र सेन की देख-रेख में बम्बई में प्रार्थना समाज (1867) की स्थापना हुई। जस्टिस एम० जी० रानाडे, भाण्डारकर अदि ने सारा जीवन सुधार कार्यों में समर्पित कर इसको बहुचर्चित महत्त्व दिलाया था। 'प्रार्थना समाज' ने हिन्दू धर्म में जात-पाँत, अछूत, नारी दशा सुधारने के अनेक कार्यक्रम चलाए लेकिन इसका प्रभाव सीमित रहा।

आर्य-समाज

1863 से प्रारंभ दयानंद सरस्वती के इस लोकप्रिय धार्मिक सामाजिक सुधार आन्दोलन ने समस्त हिन्दू-मुस्लिम-जैन समाज को चुनौतीपूर्ण शास्त्रार्थ और तर्क युक्त धार्मिक चिंतन द्वारा झकझोर कर जगा दिया था इसने हिन्दू धर्म को आक्रामक स्वरूप प्रदान कर ईसा, इस्लाम, जैन और आदि धर्मों के विरुद्ध नयी प्रतिरोधक शक्ति पैदा की।

आर्य समाज की स्थापना बंबई में 1875 में हुई। इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान वेदों में है। ईश्वर एक सक्रिय सर्जनात्मक शक्ति का नियंता है[1]। वे भ्रमातीत और अमोघ हैं। ये सर्व सम्मत ज्ञान-विज्ञान और विकास के अवरिल स्रोत हैं। वेदों के पठन-पाठन का अधिकार सबको है। आर्यों को वेदों का प्रमाण मानना चाहिए। वेदों के अतिरिक्त जो भी ज्ञान और चिन्त न है, वह भारतीय होने पर भी ग्राह्य नहीं हो सकता। आर्यावर्त्त आर्यों का देश है। हिन्दी आर्य भाषा है। यूरोपीय सभ्यता एवं पाश्चात्य ज्ञान प्रगति का उत्स भारतीय चिंतन है।[2]

आर्य समाज धार्मिक सामाजिक सुधार कार्यों में राष्ट्रीय जागरण की उत्कट राष्ट्रीयता, देश प्रेम की भावना से युक्त था। उसने राष्ट्रीय एकता, अस्मिता, गौरव-चेतना का उत्थान कर भारतीयों को समन्वित-चेतित् करने का प्रयास किया। वह शिक्षा, मानव-समानाधिकार, स्वराष्ट्र और स्वभाषा को गौरवान्वित करने वाला गैरराजनीतिक प्रगतिशील आन्दोलन था। मूर्ति पूजन, बाह्य कर्मकाण्डों का विरोध कर धर्म को नया रूप और गरिमा प्रदान की[3]। इसके राजनीतिक महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए ए०दे० रीनकोर्ट का कथन अत्युवितपूर्ण नहीं है, "आज इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि 1905 का बंगाल का महान विद्रोह परोक्ष रूप से आर्य समाज की धार्मिक राष्ट्रीयता का ही परिणाम

1. Charles H. Heimsath : Indian Nationalism and Hindu Social Reform. 118-121
2. (a) De Bary (ed) Sources of Indian Tradition, p. 634-35
   (b) Griswold H. D. The religious Quest of India pp. 369-70
3. आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्य समाज का योगदान, पृ० 60

था और महर्षि दयानन्द का संगठन राजनीतिक राष्ट्रीयता का प्रथम मूर्त्त केन्द्र-बिन्दु था।"[1] उत्तर 19वीं शती में तो इसका भारतीय राष्ट्रीय जीवन पर प्रभाव अपरिमित था।

थियासाफी

1875 ई० में मादाम ब्लावत्स्की और कर्नल आलकाट द्वारा स्थापित थियोसिफिकल सोसाइटी यद्यपि विदेश प्रसूत धार्मिक संस्था थी फिर भी हिन्दू धर्म तत्त्वों की वह प्रचारक थी जिसका मुख पत्र 'थियोसाफिस्ट' (1879) था। समाज सेवा, कर्म-सिद्धान्त, पुनर्जन्म और राष्ट्रीयता को बल देने वाली यह संस्था विश्व बंधुत्व की प्रतीक थी। श्रीमती एनी बीसेंट ने अखण्ड हिन्दुत्व का आख्यान कर अंग्रेज अन्ध-भक्त भारतीयों में 'भारतीयता' के प्रति आस्था के दीप जलाए और भारत निन्दा करने वालों को मुँहतोड़ उत्तर दिया।[2]

रामकृष्ण मिशन के प्रवर्त्तक राम कृष्ण परमहंस ने धर्म के सरल, शुद्धतम सर्वग्राह्य रूप को अपने आचरण द्वारा प्रस्तुत करके बताया कि सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर ले जाने वाले अलग-अलग रास्ते हैं। मूल तत्त्व एक है, साधन अनेक हैं तथा उनके शिष्य विवेकानन्द ने विश्व के धर्ममंच पर भारतीय अध्यातम ज्ञान तथा हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का भव्य प्रस्तुतिकरण किया। यह विचारधारा आध्यात्मिक भौतिक, पूर्व-पश्चिम के श्रेष्ठ चिन्तन से युक्त उदात्त धर्म, लोक-सेवा तथा राष्ट्र-भक्ति की भावना से पूर्ण थी जिसने भारतीय लोक मानस की हीन भावना को दूर कर प्राचीन गरिमा के पुष्प खिलाए। इसने धर्म की पुनर्व्याख्या कर उसे समाजोपयोगी तथा सार्थक बनाया।

ये धार्मिक-सामाजिक आन्दोलन भारतीय आत्मा को प्रबुद्ध करने और साम्राज्यवाद की नींव हिलाने में महत्त्वपूर्ण स्रोत सिद्ध हुए। ए०आर० देसाई का कथन उचित ही है कि ये धर्म सुधार आन्दोलन तथ्यतः राष्ट्रीय थे लेकिन रूपतः धार्मिक तथा राष्ट्रीयता के उद्भव की शक्ति सँजोए हुए थे।[3]

4. पत्रकारिता-साहित्य का राष्ट्रीय घटक

वस्तुतः पत्रकारिता और साहित्य की सशक्त आवाज के बिना राष्ट्रीय चेतना, ऐक्य, राजनीतिक स्वाधीनता और अखण्डता के लक्ष्य आदि की कल्पना करना भी कठिन है। ग्राम, नगर के हर घर-आँगन में देश के लिए प्राणों की बाजी लगाने की अलख जगाना

---

1. ए० दे० रीनकोर्ट—द सोल आफ इण्डिया, पृ० 227
   Heimsath Charles H. Indian Nationalism and Hindu Social Reform, p. 130
2. चालीस वर्षों से सुगंभीर चिन्तन के बाद में यह कह रही हूँ कि विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म से बढ़कर पूर्ण, वैज्ञानिक दर्शन युक्त एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण धर्म दूसरा और कोई नहीं है।"—(संस्कृत के चार अध्याय, पुनर्उद्धृत)
3. ए० आर० देसाई, पूर्व उद्धृत, पृ० 229

तथा स्वाधीनता के लिए देश भक्ति, एकता की लौ प्रज्वलित किए रखना राष्ट्रीय पत्रकारिता और साहित्य का ही कार्य था। यदि 19वीं शती के उत्तरार्द्ध में इन माध्यमों ने देशवासियों को अटूट निद्रा से जगाकर खड़ा न कर दिया होता तो क्या 20वीं सदी में भारत में इतना बड़ा जन-ज्वार और जन-आन्दोलन विकसित हो सकता था? तत्कालीन साहित्यिक पत्र और पत्रकार देश की हवा के रुख को पहचान कर 'राजभक्त' होने का स्वांग जरूर करते थे किन्तु इन्होंने कभी अपने जनदायित्व तथा लक्ष्य को विस्मृत करके न साम्राज्यवाद के साथ मिलीभगत की, न कभी संघर्ष कर्त्तव्य से डिगे, न ही अंग्रेजों के आँचल में छिपकर दया की भीख माँगी बल्कि इनके विरुद्ध निरन्तर विपन्नता और विपत्तियों के साये में भी दृढ़तापूर्वक सामूहिक अस्तित्व बनाए रखा। उनके एक-एक शब्द में देश के प्रति प्रतिबद्धता झलकती है। वे अकेले दु:ख झेलते हुए भी कभी जनता के प्रति गैरजिम्मेदार नहीं हुए। अत: राष्ट्रवादी समाचार पत्रों ने राष्ट्रीयता के प्रचारक और संगठनकर्त्ता का कार्य किया। उस समय के अधिकतर समाचार पत्र व्यापारिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि सजगतापूर्वक राष्ट्रीय कार्य-कलापों के अंग के रूप में प्रकाशित हुए।[1]

जागरण युग में प्राय: सभी रचनाकारों के साहित्य में राष्ट्रीयता और राजद्रोह की भावना भरपूर मात्रा में मिलती है। अत: राष्ट्रीय साहित्य "एक तरफ भारतवासियों के बढ़ते राष्ट्रीय आन्दोलन का दर्पण था और दूसरी तरफ उसे आगे बढ़ने का प्रबल अस्त्र।"[2] पत्रकारिता के बढ़ते प्रसार और प्रभाव को सभी पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकार किया है।[3]

5. अन्तर्राष्ट्रीय-क्रान्तियाँ

भारतीय नवोत्थान पर अनेक अन्तर्राष्ट्रीय-क्रान्तियों—अमेरिका की स्वातन्त्र्य घोषणा (4 जुलाई 1776), फ्रांसीसी राज्य-क्रान्ति (1789), इटली (1820-21) तथा स्पेन की (1820-23) क्रान्तियों का गहरा प्रभाव पड़ा था। वे भारतीयों में चैतन्यता और राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित करने में सफल हुई थीं। 1848 के बाद हुई अनेक यूरोपीय क्रान्तियों ने भारतीय विचारधारा पर गहन छाप छोड़ी थी। उदाहरण-स्वरूप इटली में मेजिनी और गैरी बाल्डी के नेतृत्व में 'यंग इटली' आन्दोलन, कारबोनारी संगठन तथा पेरिस कम्यून घटना (1871) के अनुकरण पर भारत में भी अनेक विद्रोही संगठन 'यंग बंगाल' आदि बने।[4]

1760-1830 का काल इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति तथा भारत में आजादी को

---

1. विपिनचन्द्र, स्वतन्त्रता संग्राम, पृ० 56
2. अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम, पृ० 61
3. Bruce T. McCully, English Education and the Origins of Indian Nationalism, p. 234
4. विपिनचन्द्र पाल, मेमोरीज आफ माई लाइफ़ एण्ड टाइम्स (भाग 1) 1932 पृ० 247

पूरी तरह खोने का है ।[1] यह कहना गलत नहीं होगा कि इस औद्योगिक क्रान्ति की रीढ़ भारत पर टिकी थी। रजनी पामदत्त का कहना कितना सही है, "भारत की लूट के सहारे जब इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति सफल हो गई तो इसने आर्थिक पद्धति में क्रान्ति को अवश्यम्भावी कर दिया और व्यापारिक पूंजीवाद के सिद्धान्तों का स्थान मुक्त व्यापार वाले पूँजीवाद के सिद्धान्तों ने ले लिया। इस प्रक्रिया ने औपनिवेशिक पद्धति की प्रणालियों को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया।[2] अतः 1813 के पश्चात् भारत में सुनियोजित शोषण का रास्ता खुल गया। इस नीति ने ग्राम-व्यवस्था, देशी न्याय-व्यवस्था, शिक्षा तथा उद्योग सभी को चौपट कर दिया जिसके फलस्वरूप भारतीयों में तीव्र प्रतिरोध के कारण राष्ट्रीय भाव अंकुरित हुए। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक ज्ञान, विज्ञान, आधुनिक शिक्षा, आवागमन के विकसित संचार साधनों तथा विस्फोट परिवेश ने भी जागरण के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्मित कर दी थी।

6. आधुनिक शिक्षा और मध्य वर्ग की भूमिका—विभिन्न राष्ट्रों के वैचारिक-सांस्कृतिक आन्दोलन आधुनिक धर्मनिरपेक्ष शिक्षा की उपज हैं।[3] पराधीन भारतीयों में भी आधुनिक शिक्षा ने ही तकनीकी क्षमता, व्यावसायिक कौशल, वैज्ञानिक दृष्टि विकसित कर उनमें नव आस्था तथा गरिमा-अस्मिता का प्रस्फुटन किया था। आधुनिक शिक्षा के निरन्तर विकास से 1885 ई० में ही अंग्रेजी समाचार पत्रों की प्रसार-संख्या 276000 तक पहुँच गई थी।[4] भारतीय मध्य बुद्धिजीवी वर्ग 'जाति-व्यवस्था की जकड़ और पूंजी के अभाव में अंग्रेजी सत्ता पद, पहचान और प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता था। किन्तु ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन भारतीयों में वैज्ञानिक ज्ञान-क्षितिज के विस्तार का आकांक्षी नहीं था। उनकी शिक्षा-नीति के केवल दो लक्ष्य थे—'औपनिवेशिक सिद्धान्तों का प्रचार और प्रशासनिक आवश्यकताओं की उपयोगिता।' उनका उद्देश्य राष्ट्रीयता और नवचेतना पैदा करना नहीं, बल्कि उस चेतना को पैदा होने से रोकने के लिए उसकी जड़ तक खोद डालना था।[5] शिक्षा के द्वारा ही ब्रिटिश संस्थाओं और मूल्यों को आदर्श रूप में संस्थापित किया जा सकता था। परम्परागत वर्ण-व्यवस्था 19वीं सती के समान चार वर्गों में विभक्त थी—आभिजात्य वर्ग, मध्यवर्ग, कृषक एवं मजदूर वर्ग।[6]

शिक्षित मध्यवर्ग ही 'देश का अन्तःकरण और मस्तिष्क था।' धर्मनिरपेक्ष शिक्षा में मँजा हुआ, आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र यह मध्यवर्ग विचार-स्वातन्त्र्य में भी अग्रणी था।

---

1. जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० 353
2. रजनी पामदत्त, इंडिया टुडे, पृ० 96
3. Anthony D. Smith, Theorics of Nationalism, p. 87-88
4. सुमित सरकार, माडर्न इंडिया पृष्ठ 89
5. हरिश्चन्द्र मैगजीन, अक्टूबर 15, 1973, पृ० 12-13
6. रजनी पामदत्त, आज का भारत

वस्तुतः तत्कालीन शिक्षित मध्यवर्ग दोहरी जिन्दगी जी रहा था। 'जहाँ एक ओर राजा राम मोहनराय और नेहरू के बीच के समय में मध्यवित्त वर्ग को ब्रिटिश औपनिवेशिक मूल्यों और सिद्धान्तों के प्रभाव के नीचे झुकते हुए देखा जा सकता है,[1] वहीं दूसरी ओर भारतीय अर्थतन्त्र के दोहन और राजनीति में उनके विरुद्ध संघर्षरत भी वही वर्ग था तथा भारतीय संस्कृति, आदर्शों; पेशेवर कला-कौशल का रखवाला भी वही था।[2]

यद्यपि 19वीं शती के प्रारम्भ में प्रारम्भिक राजनीतिक संस्थाओं—लैंडहोल्डर्स सोसाइटी, ब्रिटिश इंडिया सोसाइटी आदि में उच्चवर्ग (जमींदार, व्यापारी) का ही आधिपत्य रहा किन्तु उच्चवर्ग भारत में ही नहीं सभी देशों में विलासी, उच्छृंखल और दायित्वहीन था। वह भारत में पाश्चात्य-सभ्यता के प्रभावों से ग्रस्त अंग्रेज राजभक्त था। सर्वहारा निम्नवर्ग किसान-मजदूर तो संस्कृति-शिक्षा-सम्मान से वंचित, बौद्धिक रूप से दरिद्र था फिर भी उत्तर 19वीं शती में विभिन्न किसान आन्दोलनों तथा बम्बई-कलकत्ता कपड़ा-जूट मिलों की हड़तालों में इस सर्वहारा वर्ग में भी संगठित नवचेतना एवं जागृति के संकेत मिलने लगते हैं।

1.1.3. नवजागरण की प्रेरक शक्तियाँ एवं हेतु

राष्ट्रीय नवजागरण की प्रक्रिया अति जटिल गहन एवं अन्तर्विरोधों से युक्त थी ; उसके मूल में न जाने कितनी प्रेरक शक्तियाँ ऐतिहासिक अन्तर्धाराएँ, सामयिक परि-स्थितियाँ एवं मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ काम कर रही थीं जिनका अन्तःसम्बन्ध नव-जागरण की आत्मा से था। राष्ट्रीय रेनेसाँ के संदर्भ में अंग्रेजी इतिहासकारों, शासकों, पाश्चात्य चिन्तकों तथा राष्ट्रवादी विचारकों, पत्रकार एवं साहित्यकारों के मत परस्पर विरोधी रहे हैं।

कतिपय आधुनिक विचारकों की धारणा के अनुसार विभिन्न आर्थिक कारणों से उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का जन्म हुआ है और इसी साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिए भारत तथा एशिया के अन्य देशों में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ।[3] अंग्रेजों द्वारा भारत पर राजनीतिक आधिपत्य करने का मुख्य आकर्षण यही था कि वह ब्रिटिश साम्राज्य का औपनिवेशिक उपांग बनकर इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था और उद्योगों की समृद्धि के लिए आवश्यक खाद्य तथा कच्चे माल की संपूर्ति और ब्रिटिश उत्पादित वस्तुओं का विदेशी बाजार बन जाए। प्रख्यात इतिहासकार विपिन चन्द्र का मत है, भारत का सशक्त राष्ट्रीय संघर्ष मूलतः भारतीय जनता और औपनिवेशिक शासकों के हितों के बीच बुनि-यादी अन्तर्विरोध का परिणाम था।...औपनिवेशिक संस्कृति और विचारधारा के प्रचार-प्रसार की प्रतिक्रिया में ही भारतीय जनता में बौद्धिक-सांस्कृतिक नवजागरण और

1. कुबेरनाथ राय, सरस्वती मार्च 1964, पृ० 224
2. सं० विपिन चन्द्र, पृ० 56
3. आचार्य नरेन्द्र देव, राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृ० 9

राष्ट्रीयता के भाव उठे ।[1] देशबन्धु एन्ड्रूज एशिया में हुए पुनर्जागरण का हेतु भारतीय-पाश्चात्य संस्कृति के समन्वय को मानते हैं ।[2] इतिहासकार ओ' मेली ने रेनेसाँ के लिए तीन शक्तियों को उत्तरदायी माना है—

1. ईसा धर्मनीति
2. वैधी शासन[3]
3. विज्ञान-प्रकृति विजय ।[3]

हिन्दी साहित्यकार रामधारी सिंह दिनकर का विचार है, "भारत में ईसाइयत का प्रचार, ईसाइयों के द्वारा भारतीय धर्मों की निन्दा, यूरोप के क्रान्तिकारी बुद्धिवादी विचार और अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दुओं द्वारा हिन्दुत्व की भर्त्सना, ये कुछ कारण थे जिनसे हिन्दुत्व की नींद टूटी ।"[4]

संक्षेप में भारतीय विचारकों के मतानुसार राष्ट्रीयता और नवजागरण अंग्रेजी राज के विरुद्ध बगावत की देन है । भारत की भौतिक समृद्धि, धार्मिक-सामाजिक संतुलन, उद्योग-शिल्प और राष्ट्रीय चिति को पूर्णतः ध्वस्त करके अंग्रेजी सत्ता ने ऋणात्मक और ध्वंसात्मक भूमिका निभाई जिसकी परिणति राष्ट्रीय रेनेसाँ के रूप में हुई ।

उपर्युक्त धारणा के सर्वथा विपरीत अंग्रेजी शासकों, इतिहासकारों तथा पाश्चात्य प्रगतिवादी विचारकों आदि के मतानुसार 'भारतीय रेनेसाँ' और 'राष्ट्रीयता' के उद्भव का समस्त श्रेय और प्रेय अंग्रेजी राज की प्रगतिशील भूमिका को तथा भारत को सभ्य और समुन्नत बनाने वाले परोपकारी कृत्यों को है। उनकी मान्यता है कि राष्ट्रीय नव-जागरण अंग्रेजी शिक्षा-भाषा, न्याय व्यवस्था तथा प्रजातांत्रिक ब्रिटिश प्रशासन आदि की कृतज्ञतापूर्ण देन है । अंग्रेजों का दावा था, "भारत के लोगों का वह हिस्सा जिसमें राज-नीतिक चेतना है—बौद्धिक रूप से हमारी संतान है—इसके लिए उन्हें हमें श्रेय देना चाहिए ।"[5] भारतीय इतिहासकार ए०सी० मजूमदार का कथन है, "आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण निश्चय ही पाश्चात्य सभ्यता की देन है ।"[6]

पाश्चात्य मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित समाजवादी शोधकर्ता ए० आर० देसाई भी राष्ट्रवाद के उद्भव के संदर्भ में अंग्रेजी शासन की प्रगतिशील भूमिका को

---

1. विपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृ० 52, 474
2. सी० एफ० एन्ड्रूज, दि रेनेसाँ इन इंडिया, पृ० 18-20
3. ओ' मेली, माडर्न इंडिया एण्ड द वेस्ट
4. रामधारी सिंह दिनकर, पूर्व उद्धृत, पृ० 541
5. (क) मांटेगू—चेम्स फोर्ड रिपोर्ट (1914) पृ० 115, देखिए रजनी पामदत्त : आज का भारत ।
   (ख) सर जान सीले—दि एक्सपैंशन आफ इंग्लैंड, 1883, पृ० 254-57
   (ग) देखिए—सर जान स्ट्रेची—इंडिया इट्स एडमिनेस्ट्रेशन एण्ड प्रोग्रेस 1888, पृ० 5
6. ए०सी० मजूमदार—इंडियन एवोल्यूशन, पृ० 377

स्वीकार करते हैं। "आत्मनिर्भर स्वाधीन ग्रामीण अर्थतन्त्र पर आधारित भारत के अनैक्य की समाप्ति और पूंजीवादी रूपों के आगमन से आर्थिक इकाई के तौर पर भारत का रूपान्तरण अंग्रेजी शासन के ऐतिहासिक रूप के प्रगतिशील परिणाम थे।"[1]

वस्तुतः आधुनिक सभी विद्वानों के मत प्रख्यात अर्थचिन्तक कार्ल मार्क्स की इस अवधारणा पर अवलंबित हैं—"इंग्लैंड ग्राम समुदाय को नष्ट कर भारत में सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न करने में इतिहास का एक साधन सिद्ध हुआ।"[2]

उपर्युक्त मत का विश्लेषण करने पर कुछ प्रश्न तथा नये विचार-बिन्दु उभरते हैं—

1. क्या राष्ट्रीयता और रेनेसाँ का उदय अंग्रेजी राज की गुलामी और आत्म-निर्भर ग्राम समुदायों का विनाश किए बिना संभव नहीं था?

2. क्या भारत की समस्त प्रगति, राष्ट्रीयता, जनतन्त्र एवं आधुनिकीकरण की संकल्पनाएँ ब्रिटिश राज की भाषा, शिक्षा, प्रशासन तथा सभ्यता की उदारतापूर्ण देन थीं?

3. यदि 1857 के गदर में या इससे पूर्व भारतीयों को विजय मिल गई होती तो क्या राष्ट्रीय प्रगति और जागरण की प्रक्रिया अंग्रेजी राज की प्रगतिशील भूमिका के बिना असंभव हो जाती?

4. क्या स्वस्थ सामाजिक संगठन का पूर्णतः ध्वंस ही राष्ट्रीय क्रान्ति तथा नवोत्थान के लिए अनिवाय प्रक्रिया है?

5. क्या भारतीय नवजागरण केवल बंगाल तक सीमित रहा? वह राष्ट्रीय स्वरूप धारण न कर सका?

6. क्या यूरोप और भारतीय इतिहास में 'रेनेसाँ-काल' की सीमा निर्धारण की समस्या का समाधान हो चुका है?

7. क्या स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में नवजागरण समाप्त हो चुका है?

उपर्युक्त प्रश्नों पर गहराई से विचार करने के लिए पाश्चात्य चिन्तकों की सैद्धान्तिक स्थापनाओं की सत्यता और वैज्ञानिकता का विश्लेषण करना अपेक्षित होगा। प्राक् ब्रिटिश भारत के ग्रामीण अथतन्त्र के सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स का मत है कि "ये छोटे और बड़े पुराने भारतीय जनसमुदाय भूमि के संयुक्त अधिकार, कृषि और हस्त-शिल्प के संयोजन और अपरिवर्तनशील श्रम विभाजन पर आधारित है। इनमें प्रत्येक स्वयं एक संपूण इकाई है जो आवश्यक वस्तुओं का खुद उत्पादन करता है। उत्पादन के बड़े भाग का समुदाय स्वयं उपभोग करता है और वह विक्रयशील पण्य का रूप नहीं लेता। भारतीय समाज समग्रता में, पण्य विनिमय द्वारा उत्पन्न श्रम विभाजन से उत्पादनमुक्त है। उत्पादन के अधिशेष का अंश मात्र ही पण्य का रूप लेता है जब वह राज्य के पास पहुचता है।—सब सम्मिलित रूप से खेती करते हैं और फसल समुदाय में बाँट दी जाती

1. ए०आर० देसाई, पूव उद्धृत, पृ० 28
2. कार्ल मार्क्स का पत्र फेड्रिक को (14 जून, 1853)

है—ये स्वपर्याप्त समुदाय सदा अपने चिरन्तन रूप में फिर आविर्भूत होते रहे हैं।"[1]

मार्क्सवादी चिन्तक ए० आर० देसाई की भी लगभग यही मान्यता है—"इन गाँवों का बाहर की दुनिया से कोई सामाजिक संपक नहीं था, बैलगाड़ी आवागमन का एकमात्र साधन थी।—अगर भारत जन-जीवन को राष्ट्रत्व, आर्थिक एकता, बौद्धिक विकास और सामाजिक अस्तित्व के उच्चतर लक्ष्यों की प्राप्ति करनी थी, तो आत्मनिर्भर गाँवों का विनाश अवश्यंभावी था। ऐसे लोगों का समन्वित राष्ट्र भला कैसे बन पाता जो विभिन्न केन्द्रों में अलग-अलग विभक्त जीवन जी रहे थे।—छोटे समूहों में स्वतन्त्र और पृथक् जीवन जीने वालों की जन-चेतना राष्ट्रीय स्तर की भला कैसे होगी?[2]

उपर्युक्त प्राक् ब्रिटिश भारत के ग्रामों की अर्थ-व्यवस्था की आधारभूत स्थापनाओं के चित्रण में आंशिक सत्य ही विद्यमान है। यह सत्य है कि प्राक् ब्रिटिश भारत का ग्रामीण जीवन पूर्णत: आत्मनिर्भर, सरल एवं स्वायत्तशासी था, किन्तु यह कहना 'भारतीय गाँवों का बाहर की दुनिया से कोई विनिमय सम्बन्ध नहीं था', 'गाँव के लगभग सम्पूर्ण उत्पादन का उपभोग गाँव की जनता ही करती थी', वास्तविकता के विपरीत है। ग्रामों में अनाज, मसालों, बस्त्र तथा हस्तशिल्प की वस्तुओं का अतिरिक्त उत्पादन अवश्य होता था।[3] इस अतिरिक्त उपज को ग्रामवासी बैलगाड़ी आदि के द्वारा समीपवर्ती कस्बों (अपेक्षाकृत बड़े गाँव) में जाकर विक्रय करते थे। वहाँ से देशी-विदेशी सौदागरों द्वारा देश-विदेश में माँग के अनुसार खपत होती थी। भारत के उत्पादन की माँग और विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में कैलवर्टन का कथन द्रष्टव्य है।[4]

पुर्तगीज, फ्रांसीसी, डच तथा अंग्रेज मुख्यत: मसाले वस्त्रों आदि के व्यापार के उद्देश्य को लेकर भारत आए थे—"1600 से 1757 तक ईस्ट इंडिया कंपनी मूलत: एक व्यापार-संघ थी।···यह व्यापार संघ प्राय: बाहर से बुलियन (सोना-चांदी) लाता था और उसके बदले भारत से विलासिता के उपकरण जैसे मसाला, सूती कपड़ा इत्यादि विदेश ले जाता था—सत्रहवीं सदी के अन्त में रेशम, सूती सामान का बड़े पैमाने पर निर्यात हुआ। (ईस्ट इंडिया) कम्पनी के लिए यह बड़े लाभ का रोजगार था।"[5]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है ग्रामों में उपर्युक्त वस्तुओं की अतिरिक्त उपज अवश्य

---

1. देखिए—कार्ल मार्क्स—पूंजी खण्ड 1 प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ० 444 तथा डेली ट्रिब्यून, 26 जून 1853 और कार्ल मार्क्स एण्ड फ्रेडरिक एंगेलस, सलेक्टेड वर्क्स (खण्ड 1) 1951, पृ० 315, ए० आर० देसाई, पूर्व उद्धृत
2. ए०आर० देसाई, पूर्व उद्धृत, पृ० 8, 11, 39
3. डॉ० रामविलास शर्मा, सन् सत्तावन की राज्य क्रांति, पृ० 70, 71
4. (क) कैलवर्टन, बी० एफ० : दि अवेकनिंग ऑफ अमेरिका 1939, पृ० 16-17
   (ख) प्राक् ब्रिटिश भारत का नागरिक हस्तशिल्प अत्यन्त विकसित था और सब जगह उसकी माँग और खपत थी—ए० आर० देसाई, उपरिवत्, 12
   (ग) जवाहरलाल नेहरू—हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० 258-60
5. ए० आर० देसाई, पूर्व उद्धृत, पृ० 64

होती थी जिसका अन्तर्देशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किया जाता था।[1] अतः ग्रामों में कृषि के साथ जो विविध हस्तशिल्प उद्योग संबद्ध थे उनसे निर्मित वस्त्रों आदि का और कृषि से प्राप्त उत्पादन का सम्पूर्ण उपभोग ग्रामों तक सीमित नहीं था बल्कि विभिन्न उत्पादित सामान को बैलगाड़ी, हाथी, घोड़े, ऊंट नाव आदि साधनों के द्वारा समीपवर्ती कस्बों (अपेक्षाकृत बड़े गांव) और नगरों में ले जाया जाता था।[2] 19वीं शती से पूर्व यातायात के साधन सीमित और धीमी गति के अवश्य थे लेकिन बैलगाड़ी, घोड़े आदि की पहुंच देश में हर कहीं संभव थी क्योंकि भारत का अधिकांश भाग समतल है। उसके बीच में प्राकृतिक रुकावटें अधिक नहीं हैं। यही कारण था भारतीय ग्रामीण समाज चार कोनों में स्थित चार तीर्थों की यात्रा बैलगाड़ी आदि से करता था। बैलगाड़ी से धीमी गति से आर्थिक विनिमय सम्पन्न होता था। स्वतन्त्र भारत में आज भी दूर-दराज के ग्रामों से उत्पादित वस्तु को ले जाने-लाने तथा आवागमन का साधन बैलगाड़ी ही है।

वस्तुतः प्राक् ब्रिटिश भारत में समस्त उद्योग ग्रामों, कस्बों तथा नगरों में बिखरे हुए थे क्योंकि नगरों और ग्रामोद्योगों का स्वरूप एवं तकनीक तब एक समान थी। इसका कारण यह था कि तब तक भारत में कहीं भी स्वचालित मशीनी उपकरणों और विकसित प्रौद्योगिक तकनीक का आविष्कार नहीं हुआ था। आधुनिक भारत के समान तब भी भारत की अधिसंख्य जनता ग्रामों में ही रहती थी। नगरों की संख्या अधिक नहीं थी। अतः कृषि से संयोजित ग्रामीण उद्योगों में निर्मित वस्तुओं से ही मांग की संपूर्ति होती थी क्योंकि देश-विदेश में प्रसिद्ध मसालों, वस्त्रों, हस्तशिल्प, चर्मकाष्ठ आदि उद्योगों की प्रकृति और आवश्यकताएँ ऐसी हैं कि बिना कच्चे माल के विनिमय के कतिपय नगरों के हस्तशिल्प उद्योग विदेशी मांग की आपूर्ति नहीं कर सकते थे। अतः ये ग्रामोद्योग ही स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय माँग की संपूर्ति अपने अधिक उत्पादन से करते थे।

अतः वास्तविक तथ्य कुछ इस प्रकार हो सकते हैं :

1. प्राक् ब्रिटिश भारत में आत्म-निर्भर ग्रामों का आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन न तो बाहरी दुनिया से न विच्छिन्न था, न ही उदासीन।

2. इन ग्रामों में उत्पादित संपूर्ण कृषि और हस्तशिल्प वस्त्रों आदि का सारा उपभोग ग्रामों और राज्य के लगान के रूप में ही होता था वरन् अतिरिक्त उत्पादन पण्य का रूप धारण करता था।

3. बैलगाड़ी आदि से भी आर्थिक विनिमय संभव था।

4. भारत में नागरिक हस्तशिल्प के साथ ग्रामीण हस्तशिल्प भी समुन्नत था क्योंकि दोनों की तकनीक में कोई अन्तर नहीं था।

---

1. डा० रामविलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, पृ० 336-38
2. Irfan Habib, Agrarian System of Mughal India (1556-1707) pp. 61-62.

5. वस्तुतः ग्रामों की अपरिवर्तनशीलता, स्थायी संरचना और चिरंतनता[1] का कारण उनका सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों से शून्य होना नहीं था। सच्चाई तो यह है कि भारतीय ग्रामीण समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना तथा विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था सुदृढ़ भित्ति पर आधारित थी। अंग्रेजों से पूर्व भी भारतीय समाज के सामने सामाजिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक प्रगति के निश्चित आदर्श, उच्च लक्ष्य और प्रौढ़ परिकल्पनाएँ थीं। भारतीय जीवन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे आदर्शों से संतुलित था जिनमें भारतीय उद्योग व्यवसाय की श्रेष्ठता, साहित्य, कला, शिल्प, धर्म तथा व्यक्तित्व और समाज का पूर्ण विकास समाविष्ट था। व्यवसाय और उद्योग आनुवंशिकता के सिद्धान्त पर तथा श्रम विभाजन, वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। कृषि, उद्योग, कला साहित्य तथा धर्म सभी समुन्नत थे। राजनीति और राजा का मध्यकाल तक केवल इतना दखल था कि उन्हें लगान के रूप में उत्पादन का कुछ हिस्सा देना पड़ता था। आज के समान प्रजातांत्रिक केन्द्रीय सत्ता नहीं थी। जहाँ पूरे देश के लोगों का भाग्य चन्द चुने हुए जन-प्रतिनिधियों की मुट्ठी में केन्द्रित हो जाता है।

अत: विकेन्द्रित, स्वावलम्बी, स्वतन्त्र ग्रामीण अर्थव्यवस्था का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि वे सामाजिक-आर्थिक निष्क्रियता और बौद्धिक जड़ता के दुर्ग थे।

वस्तुतः भारतीय समाज की सुदृढ़ आर्थिक-सांस्कृतिक संरचना और मनीषा के कारण ही भारत मध्यकाल तक राजनीतिक, उलटफेर, विदेशी आक्रमणों, लूट को झेल, अनेक विदेशी संस्कृतियों को पचाकर सामाजिक अक्षुण्णता, सांस्कृतिक विरासत तथा समृद्धि को चिरंतन रख पाया था। इतिहास के किसी भी दौर से उसकी तुलना विश्व के अन्य देशों से की जाए तो वह भौतिक समृद्धि, आध्यात्मिक-शक्ति तथा सामाजिक संतुलित व्यवस्था, शिल्प-औद्योगिक गुणवत्ता तथा शिक्षा आदि में जगत्-गुरु और सोने की चिड़िया कहलाता रहा।

भारतीय इतिहास साक्षी है कि देश अनेकों बार पहले भी राजनीतिक अस्थिरता, अराजकता तथा धार्मिक संकीर्णता से उबरा था। औरंगजेब की मृत्यु (1707) के पश्चात् जब देश में अराजकता और धार्मिक धर्मांधता का वातावरण व्याप्त हो गया था यदि उस समय विदेशी गुलामी की घड़ियाँ किसी तरह टल जातीं तो क्या अन्य देशों के समान (जो पराधीन नहीं रहे) भारत का स्वाभाविक विकास और वैज्ञानिक उन्नति नहीं होती? भारत के समृद्ध उद्योग असमय ही काल-कवलित न होकर फिर न फलते-फूलते? क्योंकि भारतीय ग्रामीण व्यवस्था चिरंतन थी। भारत सदैव नवीन विचारों को ग्रहण करने और पचाने में अग्रणी रहा है। वह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार पर पहले से ही हावी

1. ग्राम समुदाय छोटे-छोटे गणतंत्र हैं··· विदेशी सम्बन्धों से ये मुक्त हैं। जहाँ कुछ भी स्थायी नहीं, वहाँ ये जैसे अकेले अमर हैं। राजकुल लुढ़कते रहे, क्रांतियाँ होतीं रहीं, हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिख अंग्रेज क्रमशः मालिक बनते रहे, लेकिन ग्राम समुदाय यथापूर्व बने रहे।—चार्ल्स मेटकाफ 1835

था। पूंजीपति व्यापारियों का उदय हो चुका था।[1] तब क्या उसके व्यवसायी पूंजीपति समय के साथ शक्तिशाली न होते ? विश्व में होती क्रांतियों और आविष्कारों की जानकारी उन्हें अवश्य होती क्योंकि अन्य देशों से उसके राजनयिक-व्यापारिक सम्बन्ध पहले से ही थे।

किन्तु इतिहास की वास्तविकता इसके विपरीत रही। सत्रहवीं शताब्दी से ही अंग्रेजों की निरन्तर लूट, व्यापारिक लाभ के लिए किये गए भयंकर आर्थिक राजनीतिक षड्यंत्रों ने भारतीय ग्रामीण ढाँचे का समूल विनाश कर भारतीयों को स्थायी रूप से गरीबी, बेकारी एवं अशिक्षा के दलदल में ढकेल दिया। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारतीयों को मूल ज्ञान धारा से काटकर भारतीय मनीषा, मस्तिष्क और आत्मा को पूरी तरह ध्वस्त करने का प्रपंच रचा। उनकी ध्वंसात्मक नीतियों, अत्यधिक आर्थिक दोहन तथा हस्त-शिल्प, वस्त्र आदि उद्योग के पूर्णतः नष्ट हो जाने से भारत आर्थिक-नैतिक-शैक्षिक रूप से पूरी तरह पिछड़ गया। फलस्वरूप भारतीयों में अनेक बुराइयां, खोखलापन, भाग्यो-पजीविता तथा हीन भावना पैदा हुई। गरीबी-अशिक्षा ने उसका आत्म-विश्वास, स्वाभि-मान, सत्वशक्ति सब कुछ सोख लिया। भारत की लूट के बल पर इंग्लैंड ने औद्योगिक क्रांति संपन्न की। भारत की सुदृढ़ औद्योगिक-सांस्कृतिक-आर्थिक ढाँचे की रीढ़ को तोड़ कर उसे उत्पादक औद्योगिक राष्ट्र से कृषि प्रधान उपभोक्ता देश बना डाला। देश की समृद्धि, स्वस्थ उच्च आदर्श एवं नैतिक-आध्यात्मिक मूल्य सब अंग्रेजी साम्राज्य की नींव सुदृढ़ करने में खप गए। दमन, लूट, शोषण, जुल्म-प्रतारणा तथा धर्म के अपहरण की प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीयों में निज अस्मिता, धर्म की रक्षा के भाव उदित हुए। 1857 के स्वाधीनता विप्लव में अंग्रेजी राज के विरुद्ध एक असंगठित समवेत जन-विद्रोह तथा जागृत चेतना देखने को मिलती है।

एक क्षण के लिए इतिहास की वास्तविकता को भूलकर 1857 के स्वतन्त्रता समर में भारतीयों की विजय की कल्पना कर ली जाए तो क्या उस स्वतन्त्र भारत में जापान आदि देशों के समान सर्वतोमुखी विकास संभव नहीं था ? जापान आदि देशों का उदा-हरण समक्ष रखकर क्या भारत भी उपनिवेशीकरण और अभिनवीकरण में नवजागरण तथा नवीनीकरण को चुन सकता था ? भारत पुनः अंग्रेजी राज की गुलामी के बिना भी उद्योग, शिल्प व्यवस्था आदि का पूंजीवादी रूपान्तरण अवश्य कर सकता था, क्योंकि जागरण की आधार भूमि निर्मित हो चुकी थी।

यह एक कठोर व्यंग्य और दुर्भाग्यपूर्ण विडंबना है भारतीयों को सभ्य बनाने, पिछड़ी हुई जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाने और स्वराज्य का प्रशिक्षण देकर सामाजिक-

1. (क) अयोध्या सिंह—भारत का मुक्ति संग्राम, पृ० 6-7
   (ख) मुगल राज्यसत्ता विशुद्ध सामंती राज्यसत्ता नहीं है, वह पूंजीवादी हितों को बढ़ावा देने वाली राज्य सत्ता है और उसका सम्बन्ध पूंजीवाद की पहली मंजिल से है जिसे व्यापारिक पूंजीवाद कहा जाता है।
   —डा० रामविलास शर्मा—भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद, पृ० 319

राजनीतिक क्रांति करने का समस्त श्रेय अंग्रेजी साम्राज्य, सभ्यता, भाषा और शिक्षा को दिया जाता है और भारत की आधुनिक प्रगति, समाज में पुनर्जागृति तथा राष्ट्रीयता के लिए अंग्रेजी राज की गुलामी की अनिवार्यता को स्वीकार किया जाता है।

किन्तु अंग्रेजों द्वारा लिखित अधिकांश इतिहास "आमतौर पर ब्रिटिश हुकूमत की तरफदारी में या तो सफाइयाँ पेश करते हैं या उनके गुण गाते हैं—ब्रिटिश जमाने के इतिहास का भी अंग्रेजों के गुणों और अंग्रेजी हुकूमत का बड़प्पन जाहिर करने के लिए तोड़-मरोड़ किया गया है।[1] अतः अंग्रेजों के दावे वास्तविकता के विपरीत और गुलाम जनता को भुलावे में डालने के लिए थे क्योंकि यही तो शासक भारतीयों से कबूल करवाना चाहते थे कि अंग्रेज राज उनके लिए सुख, शांति और समृद्धि लाया। प्रारम्भिक राष्ट्रवादी नेता उनके भुलावे में आकर अनेक याचिकाएँ और स्मरण-पत्र तैयार करते रहे।

अंग्रेजी राज ने सदैव 'फूट डालो और राज्य करो' नीति को प्रश्रय देकर भारतीय राष्ट्र की एकता को तोड़ना चाहा, जोड़ना नहीं। अतः भारत का नवोत्थान क्योंकि अंग्रेजी राज के अन्तर्गत हुआ था इसलिए भारतीय पुनर्जागरण के सूत्रधार वही हैं, कहना सही प्रतीत नहीं होता क्योंकि भारतीय ग्राम अर्थ-व्यवस्था तो शेष भारत से पहले से ही संयुक्त थी। भौतिक आधार पहले ही निर्मित था, तब अंग्रेजों ने ग्रामों की स्वस्थ इकाई को तोड़कर कौन-सा भौतिक आधार स्थापित किया ?

वस्तुतः भारतीय नवजागरण की गहरी जड़ें अपने देश के पुरातन ज्ञान वैभव तथा अपनी धरती की मिट्टी में ही फैली हुई थी, शिक्षा-पत्रकारिता ने उन्हें पोषित करके आगे बढ़ाया। संक्षेपतः रेनेसाँ अंग्रेजों की पोषित या बौद्धिक संतान, विशिष्ट देन अथवा उदारतापूर्वक दी हुई विरासत नहीं था वरन् यह तो विश्व में हुई क्रांतियों, विगत भारतीय दर्शन-मनीषा के पुनरुत्थान, बौद्धिक स्वाधीन चिन्तन का निचोड़ तथा पाश्चात्य-प्राच्य धर्म-संस्कृति स्वार्थों के द्वन्द्व की परिणति था।

भारत में नवजागरण की लहर केवल बंगाल तक ही परिसीमित नहीं रही थी। लगभग सभी देशी भाषाओं की पत्रकारिता और नेटिव न्यूज पेपर्स के गुप्त दस्तावेजों से यह स्पष्ट हो जाता था कि लगभग पूरे राष्ट्र में एक समान नवचेतना का स्पंदन अनुभव किया जा रहा था तथापि क्षेत्रीय स्तर पर उसकी गहराई, प्रारम्भ-समय और कारकों में अन्तर था।

रेनेसाँ की अवधारणा का सबसे जटिल पहलू ऐतिहासिक काल-निर्धारण से संबद्ध है। वस्तुतः जो विद्वान इस बात से इनकार करते हैं कि यूरोप और भारत में रेनेसाँ का अस्तित्व रहा ही नहीं अथवा समझते हैं कि यूरोप में केवल 1500 शताब्दी और भारत की 19वीं शती नवजागरण काल था क्योंकि इसी समय आधुनिक युग की प्रवृत्तियों का

---

1. जवाहरलाल नेहरू, हिंदुस्तान की कहानी, पृ० 117

पदार्पण हुआ वस्तुतः नवजागरण की अवधारणा अतीत, वर्तमान, और भविष्य के मध्य सेतु और नवनिर्माण का कार्य करती है। यह प्रक्रिया तब प्रारंभ होती है जब मानव अतीत की सुदीर्घ संघर्ष-परंपरा को विवेकयुक्त विश्लेषण द्वारा वर्तमान परिप्रेक्ष्य में। विश्लेषण कर भविष्य को नयी दिशा-दृष्टि देता है। अतःऐतिहासिक काल विभाजन को निश्चित दृढ़ मत के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि रेनेसाँ के प्रारम्भ-अवसान का अनुमानित समय हर देश का अंतिम निष्कर्ष रूप में निकाले तो यूरोप में चार सौ वर्षों से अधिक तथा भारत में स्वाधीनता तक माना जा सकता है। भारत में नेहरू युग में चेतना अवरुद्ध हुई अब पुनः पिछड़े समाज में जागरूकता परिलक्षित की जा सकती है। अतः रेनेसाँ इतिहास के किसी एक काल विशेष में न होकर बार-बार हो सकता है, रुक-रुककर हो सकता है। उस समय भारतीयों का सबसे बड़ा संकट भारतीय पहचान और अस्मिता का था अतः पत्रकार केवल मान्य बंधनों का संशोधन ही नहीं करना चाहते थे बल्कि पूरी जर्जर व्यवस्था का रूपान्तरण भी चाहते थे।

मुस्लिम नवोत्थान एवं चिंतन—उत्तर 19वीं शताब्दी में भारतीय इस्लाम की चिंतनधारा और जीवन में भी महत्त्वपूर्ण वैचारिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन स्पष्टतः दिखाई देते हैं। भारतीय मुस्लिम संख्या में पाँच करोड़ थे लेकिन जिनकी व्याप्ति सम्पूर्ण देश में थी, इहलौकिक जीवन में धर्म को मार्गदर्शक मानने वाले[1] थे। 1857 ई० के जन-विद्रोह के पश्चात सेना, सरकारी नौकरी, शिक्षा तथा राजनीतिक प्रभुता से वंचित इस वर्ग पर शत्रुओं का क्रोध शत्रु-प्रतिद्वन्द्वी बनकर टूट पड़ा था।[2] प्रतिक्रिया-स्वरूप अनेक पुनरुत्थानवादी और सुधारवादी, आंदोलन संगठन और नेताओं के प्रयास से जागरूकता अंगड़ाई लेने लगी थी। पुनरुत्थानवाद को बढ़ावा देने वाले आंदोलनों में वहाबी आंदोलन, बंगाल का फर्जिया और उत्तर में देव बंद स्कूल का 'दारुल-उलूम' आदि के प्रभावशाली नेताओं सईद अहमद, मोहम्मद कासिम ननौतवी गंगोही आदि ने अंग्रेज शिक्षा, भाषा, शासन के विरुद्ध घृणा भाव जगाकर अभियान चलाया था तथा भारत को 'दारुल हरब' बताकर शुद्ध धर्म के पुनरुत्थान का उपदेश दिया[3]। 1804 ई० में हाजी शरीय तुल्लाह ने बहादुपुर में किसान आंदोलन का सूत्रपात किया। सिक्खों और बंगाल के जमींदारों के विरुद्ध वहाबियों के संघर्ष का कारण आर्थिक था साम्प्रदायिक नहीं[4]। अंग्रेजों का दमन-चक्र चला वहाबी आंदोलन क्रूरता से दबा दिया गया।[5]

1. सं० इरफान हबीब, मध्यकालीन भारत (भाग 2), पृ० 158
2. सर लायल, एस०जी०, एशियाटिक स्टडीज : रिलिजंस एण्ड सोशल, पृ० 239-40
3. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ० 668-70
4. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, पृ० 102
5. होम डिपार्टमेंट प्रोसिडिंग्स, ज्यूडिशियल, 8 जनवरी 1872, 51(बी) अगस्त 1872 30-31 (ए)

कलकत्ते में 'मोहम्मडन लिटरेरी सोसाइटी (1863 ई०) में नबाब अब्दुल लतीफ तथा उसके प्रतिद्वन्द्वी सैयद अमीर अली (1849-1928 ई०) ने 'सेंट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसिएशन' द्वारा जागरूकता लाने का प्रयास किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अमीर अली से 'इंडियन एसोसियेशन' में शामिल होने का अनुरोध किया था। किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। अतः मुस्लिम नवोत्थान और हिन्दू नवजागरण का विकास विपरीत दिशा में हुआ।'[1]

ब्रिटिश शासन राष्ट्रीय आंदोलन और भारतीयों की एकता को जड़ से खोदने के लिए कांग्रेस विरोधी आंदोलन के लिए प्रोत्साहित किया तथा शिक्षित भारतीयों में सिविल सेवा, देवनागरी और उर्दू भाषा विवाद और गोरक्षा के मुद्दों को उछालकर विद्वेष और सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया।

सर सैयद अहमद खान और अलीगढ़ आंदोलन—बहावी आंदोलन के द्वारा मुस्लिम बुद्धिजीवियों में वैज्ञानिक मानसिकता, जनतांत्रिक पद्धति और राष्ट्रीयता का विकास संभव नहीं था। 1843 में लॉर्ड एलेनबोरो ने कहा था कि मुस्लिम समुदाय ने हमारे प्रति विद्रोहात्मक रुख अपनाया है और हमारी सही नीति हिंदुओं को बढ़ावा देने की है और इसी नीति पर अमल लाया गया था किन्तु जैसे ही राष्ट्रीय नवजागरण द्वारा हिन्दू समुदाय अंग्रेजी शासन के प्रति आक्रामक होता गया अंग्रेजी के रुख में परिवर्तन सर सैयद अहमद के नीति और कार्य-कलापों के साथ आता गया।[2] 19वीं शती के पूर्वार्ध में मुस्लिम समुदाय यह अनुभव नहीं करता था कि इस्लाम की उन्नति और भारत की परतंत्रता परस्पर विरोधी बातें हैं किन्तु अंग्रेज इतिहासकारों ने 'बाँटो और राज करो' नीति के द्वारा सांप्रदायिक ढंग से हिन्दू-मुस्लिम चिंतन को विकसित किया तथा मध्यकालीन इतिहास के लेखन-शिक्षण से हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति पर बल देकर विभाजक प्रवृत्तियों का पोषण किया। हिन्दू-पुनरुत्थान में भी मध्यकालीन संस्कृति को शामिल नहीं किया गया। सुनियोजित भ्रामक प्रचारतंत्र के प्रभावशाली प्रयोग द्वारा यूरोपीय शक्ति का मुकाबला करने में हिन्दू-मुसलमान दो हो गए। सर सैयद ने मुसलमानों का हित सरकार के साथ और राष्ट्रीय कांग्रेस आंदोलन का प्रतिरोध करने में समझा तथा मुस्लिम समाज को शैक्षणिक-वैचारिक आधार देने के लिए एक साइंटिफिक सोसाइटी (1864), एक उर्दू पत्रिका 'तहज़ीबुल अखलाक' (1870) तथा अलीगढ़ एंग्लो मुहम्मडन ओरियन्टल कालेज (1875) की स्थापना करके आधुनिक शिक्षा द्वारा एक नयी पीढ़ी और नवचिंतन का विकास किया। और इस्लाम की आधुनिक पुनर्व्याख्या कर वैज्ञानिक चिन्तन पैदा करने की कोशिश की। स्वतंत्र प्रजातंत्रीय भारत में मुसलमानों के भविष्य को लेकर अलीगढ़ आंदोलन के नेता सर सैयद, चिराग अली, सईद मुस्तफा खाँ हिन्दू बहुमत से आशंकित-

1. जैन, एम०एस० अलीगढ़ मूवमेंट : इट्स आरिजन्स एण्ड रियल्टी, पृ० 40
2. शान मोहम्मद, अलीगढ़ मूवमेंट : बेसिक डोक्यूमेंट (1864-1898) पृ० 16-21
3. बेनी प्रसाद, इंडियाज हिन्दू-मुस्लिम क्योशचंस, पृ० 31-32

थे। फलतः कांग्रेस का विरोध करने के लिए उन्होंने दो समितियों 'युनाइटेड पैट्रोयोटिक एसोसियेशन' (1888) तथा मोहम्मडन एँग्लो, ओरियण्टल डिफेंस एसोसियेशन ऑफ अपर इंडिया (1893) की स्थापना की। सर सैयद ने इंग्लैंड से लौटने पर अनुभव किया था कि मुसलमान हर जगह सबसे पिछड़े लोग हैं।[1] उन्होंने मुस्लिम समाज को नये सैद्धान्तिक एवं शैक्षणिक आदर्श देकर एक नये राष्ट्र के नवनिर्माण की ठोस आधारशिला प्रदान की।[2]

1. अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गजट 1869, पृ० 317
2. शेरवानी एच०के०, अलीगढ़ मूवमेंट, पृ० 33-34